जुलाई - सितंबर 2001 प्रतियोगिता विशेषांक वर्ष : 33 ❊ अंक : 3

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

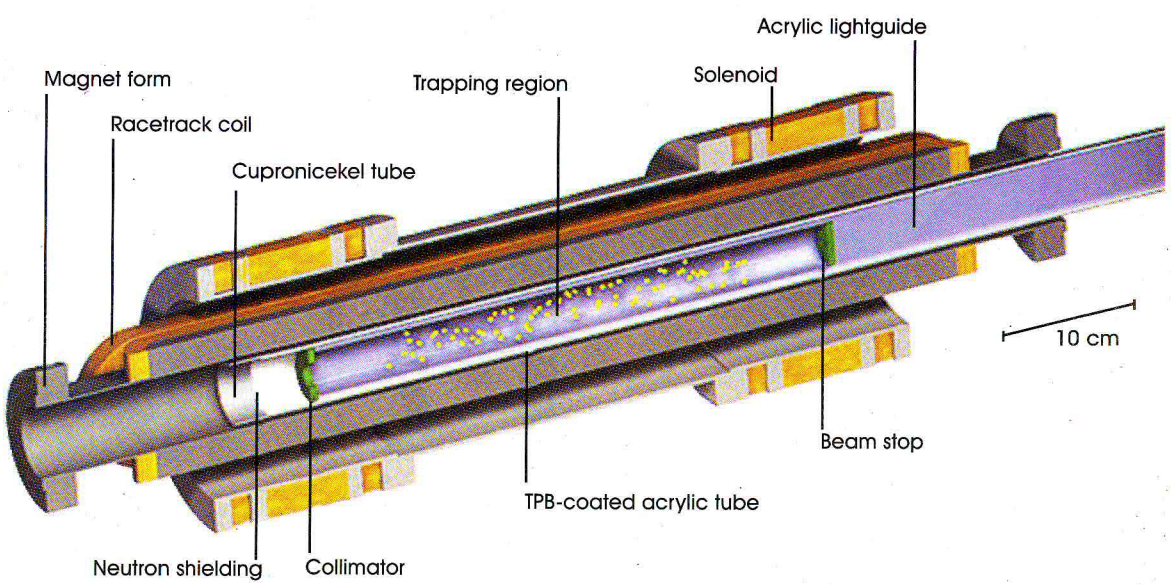

न्यूट्रॉन ट्रैप का चित्र

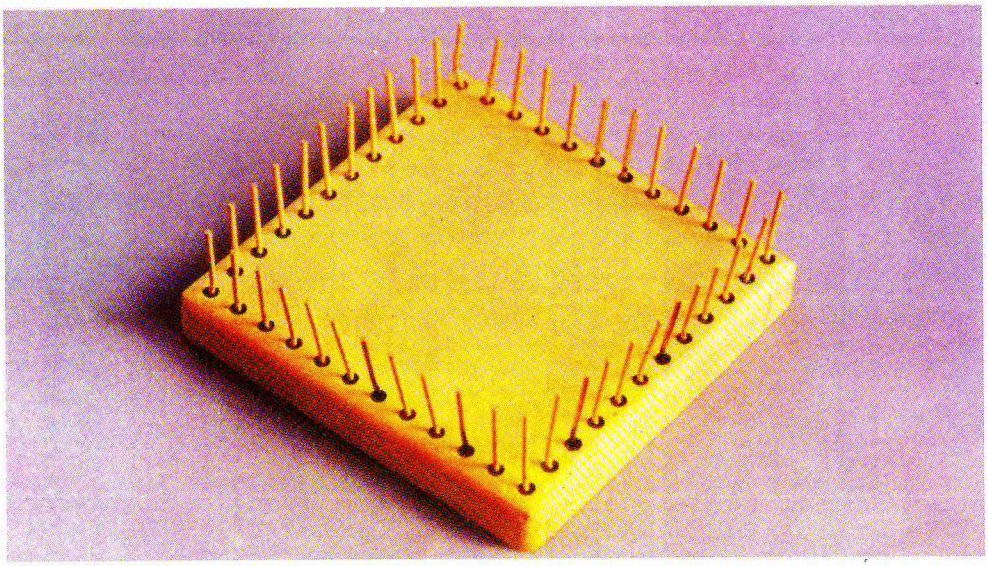

माइक्रो परिपथों में प्रयुक्त होने वाली 44 पिनों की कांच-धातु संधि (GM सील)

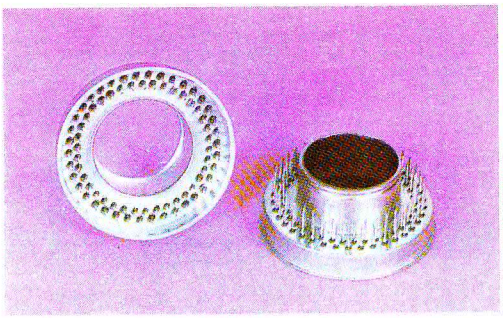

अवरक्त संसूचक क्राइयोस्टेट की ऐरे में
विद्युत संबंध के लिए प्रयुक्त
76 पिनों की GM सील

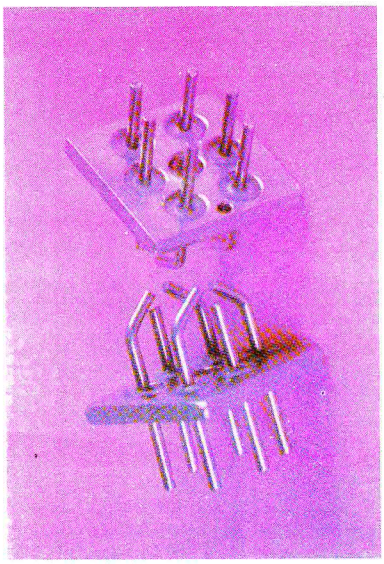

'ताप आयनन संहति वर्णक्रमदर्शक' में
प्रयोग आने के लिए बनायी गयी विशेषतः
आकल्पित झुकी हुई पिनों वाली GM सील

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

प्रतियोगिता विशेषांक

वर्ष 33 अंक 3

जुलाई-सितंबर 2001

: व्यवस्थापन मंडल :

श्री कुलवंत सिंह
(संयोजक)

डॉ. अशोक कुमार सूरी
श्री रमेश चंद्र पंत
श्री नंद लाल सोनी
श्री गोरा चक्रवर्ती

: संपादन मंडल :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
(संयोजक)

श्री हरिओम मित्तल
डॉ. राज नारायण पांडेय
श्री जय प्रकाश त्रिपाठी
श्री दिनेश कुमार शुक्ल

वार्षिक शुल्क

संस्थागत	व्यक्तिगत
100 रु.	50 रु.

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
मुंबई - 400 085

संपादकीय 3

लेख

1. वर्तमान सदी सुनेगी क्वांटम परिघटनाओं पर आधारित अनुप्रयोगों की अनुगूंज 5
   - कपूर मल जैन
2. एलीलोपैथी प्रक्रिया के कुछ नये आयाम 14
   - कु. इंदु बुघानी
3. जापानी मस्तिष्क शोथ - एक असाध्य प्राणघाती व्याधि 22
   - उर्मिला तिवारी
4. जीन परिवर्तित भोजन - स्वास्थ्य के दरवाजे पर ख़तरे की नयी दस्तक 34
   - डॉ. राज किशोर
5. न्यूट्रॉन ट्रैप 40
   - आसावरी मराठे
6. मानव-मस्तिष्क : एक स्वनियंत्रित कंप्यूटर 47
   - कु. मीता चटर्जी एवं कु. गीता चटर्जी
7. धूम्रपान से निकली कार्बन मोनोऑक्साइड के विषैले प्रभाव 52
   - डॉ. साहब सिंह एवं एन. एस. त्यागी
8. पुष्प निर्जलीकरण की विधियां एवं इसकी व्यावसायिक उपयोगिता 57
   - डॉ. सुबोध कुमार दत्ता
9. मध्य हिंद महासागर के बहुधात्विक पिंडों के खनन में तलछट के कणों की भूमिका 60
   - डॉ. अनिल भि. वलसंगकर

● "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

● "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं।

● "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा।

'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं। परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार ली गयी है।

टिप्पणियां

1. ओज़ोन और वसुंधरा 68
- प्रेमचंद्र श्रीवास्तव

2. फ्लोजिस्टान 69
- कुलवंत सिंह

3. तुलसी के तीन प्रकार 71
- मोहन चंद्र कबड्वाल

विज्ञान कविता

1. भूकंप और वैज्ञानिक 72
- रमेश कुमार शर्मा

2. पारस पत्थर 72
- दिलीप भाटिया

3. भारी-पानी 74
- अनंत भट

विज्ञान समाचार

● **भा. प. अ. केंद्र से** 73

● **अन्य विज्ञान समाचार** 75

कुछ फूल : कुछ कांटे 79

लेखकों से निवेदन

- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये,
- लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें,
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर काग़ज के एक ओर ही लिखें,
- विषय वस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अंत में संलग्न कर दें,
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जायेंगी।

- संपादक

संपादकीय

जैविक युद्ध का एक घटक "एन्थ्रैक्स"

अभी हाल में 11 सितंबर 2001 को अमरीका पर हुए आतंकवादी हमले के बाद जैविक युद्ध की कुछ आशंकाएं होने लगी हैं। यूं तो युद्ध एवं महामारी का पुराना संबंध है और महामारी युद्ध का एक स्वाभाविक परिणाम भी है परंतु महामारी के कारकों का एक नियोजित तरीके से उपयोग जैविक युद्ध का रूप ले लेता है। यूरोप वासियों के अमरीका में बसने के प्रयास के दौरान वहां के मूल निवासी 'रेड इन्डियन्स' लोगों में जानबूझकर चेचक की महामारी फैलाकर युद्ध जीतना एक तरह का जैविक युद्ध ही था। इसी प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान का चीन में प्लेग फैलाना, कई उदाहरणों में से एक है। ब्रिटेन की 'साइंस जर्नल' के संपादक रोबिन क्लार्क द्वारा गत शताब्दी के छठे दशक में प्रकाशित 'द साइलैंट वैपन्स' में यह लिखा गया था कि रसायनशास्त्री तथा जीव विज्ञानी ऐसे प्राकृतिक विषों और विषाणुओं की खोज में लगे हैं जो जन संहार में मौन शस्त्रों के रूप में इस्तेमाल हो सकेंगे। और आज बोटुलिस्म नामक जीवाणु जैव सृष्टि को समाप्त करने में सक्षम है। इसी संहार की आशंका के कारण 1972 में एक अंतर्राष्ट्रीय संधि हुई थी जिसके तहत जैविक कारकों के युद्ध में इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगाया गया। परंतु इसमें किसी जांच का प्रावधान न होने से यह कारगर नहीं बन सकी। कालांतर में जैवशास्त्र में हुई प्रगति से इस पर पुनर्विचार हुआ। एक 'निरस्त्रीकरण संगोष्ठी' में इस संधि को रासायनिक शस्त्र संधि की तरह जांच तथा निरीक्षण के प्रावधान के साथ रखने का जब प्रस्ताव आया तो दुर्भाग्यवश बुश प्रशासन ने उस समय इस समझौते की बातचीत को नामंजूर कर दिया था। वर्तमान परिस्थितियों में अमरीका अब इस पर पुनर्विचार के लिए पहल कर रहा है।

यूं तो प्राणी जगत के उद्भव के समय से मनुष्य अपनी स्वाभाविक सुरक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्र बनाता रहा है। आज वैज्ञानिक प्रगति से इनके स्वरूप तथा क्षमताओं में अकल्पनीय बदलाव आया है। निहित स्वार्थों से प्रेरित व्यक्ति, समुदाय, राष्ट्र इनका उपयोग अपने उद्देश्यों की तुष्टि के लिए बेहिचक कर रहे हैं। विज्ञान तो सही ज्ञान देता है परंतु यदि मानव की सोच में विकृति आ जाय तो इसमें विज्ञान का क्या दोष है। आज अच्छाई तथा बुराई के बीच चल रहे द्वंद्व में मनुष्यों द्वारा लिये गये निर्णय कल्याणकारी एवं विनाशकारी दोनों ही हो सकते हैं। अतः इन परिस्थितियों में जागरूकता ही सबसे अहम् बात है जो हमें अधिक सुरक्षा दिला सकती है।

उपरोक्त जैविक युद्ध के लिए विकसित विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं और जीवाणुओं (प्रलय कीट) द्वारा जानलेवा बीमारियां होती हैं जिनमें प्रमुख हैं : एन्थ्रैक्स, ब्रूसेलोसिस, एन्सेफेलोमाइटिटिस, ब्यूबोनिक प्लेग, सिट्टाकेलिस, क्यू फीवर, रिफ्टर वैली फीवर, टुलारेमिया (खरगोश बुखार), बोटुलिस्म इत्यादि। एन्थ्रैक्स आजकल बहुत चर्चित है। इसके तीन रोग विषयक (क्लिनिकल) रूप हैं ; (i) त्वचीय (क्यूटानेयस) (ii) अंतःश्वसन (इन्हेलेशन) (iii) जठरांत्र (गैस्ट्रो इन्टेस्टिनल)।

त्वचीय एन्थ्रैक्स में बीजाणुओं (Spores) का त्वचा के माध्यम से, अंतःश्वसन प्रकार में श्वसन नली तथा जठरांत्र प्रकार में अंतर्ग्रहण (ingestion) द्वारा एन्थ्रैक्स होता है। एन्थ्रैक्स जैसी संक्रामक बीमारी का कारक एक बड़ा ग्राम-पोजेटिव, नॉनमोटाइल बीजाणु बनाने वाला बैक्टीरियल रॉड के रूप में पाया जाता है। इसे बैसीलस एन्थ्राइसिस (B-Anthrasis) बीजाणु कहते हैं जिसके जैविक आतंकवाद में इस्तेमाल की बड़ी संभावना है। एन्थ्रैक्स रोग को मेलिगनेन्ट (हानिकारक) एडेमा, एवं ऊन छांटने वालों (वूल सॉर्टर्स) की बीमारी भी कहते हैं। साधारणतः यह बीमारी जंगली तथा पालतू निम्न मेरुदंड वाले जानवर जैसे भेड़, बकरी, ऊंट, बारहसिंगा में होती है। मनुष्यों में यह बीमारी तब फैलती है जब वे संक्रमित जानवर के ऊतकों से उद्भाषित होते हैं। यह आमतौर पर एक मनुष्य से दूसरे में नहीं फैलती है, और यदि फैलती भी है तो वह केवल त्वचीय माध्यम से होगी।

त्वचीय एन्थ्रैक्स के आरंभ में त्वचा में कीड़े के काटने जैसा खुजलीदार फफोला पड़ता है जो एक से तीन सेंटीमीटर तक बड़ा हो जाता है परंतु कुछ दिनों में एक दर्दहीन अल्सर का रूप ले लेता है। इसके आसपास के लिंफ ग्लैंड सूज जाते हैं। अंतःश्वसन एन्थ्रैक्स उन लोगों में हो सकता है जो संक्रमित जानवरों के बालों के संसाधन जैसे व्यवसाय से जुड़े हों। इनमें पशु चिकित्सक / सहायक, पशु वध गृह के कर्मचारी तथा संबंधित प्रयोगशालाओं

के कर्मचारी प्रमुख हैं। इन बीमारियों के संक्रमण से सांस लेने (फेफड़ों) की प्रक्रिया के नष्ट हो जाने से मृत्यु हो सकती है, यदि शीघ्र इलाज नहीं किया गया। इसके प्रारंभिक लक्षण आम जुकाम जैसे होते हैं परंतु कई दिनों के बाद सांस लेने में दिक्कत होने लगती है। इसमें मृत्यु दर 90 से 100% तक देखी गयी है।

जठरांत्र एन्थ्रैक्स दूषित मांस सेवन करने से हो सकता है जिसमें आंतों में सूजन आ जाती है। प्रारंभिक लक्षणों में भूख न लगना, मितली, उल्टी, बुखार और फिर पेट दर्द होता है। बाद में प्रचंड किस्म का दस्त एवं खून की उल्टी हो सकती है। डॉक्टरों का मानना है कि इसका ऊष्मायन (incubation) काल 7 दिनों का होता है। यह आदमियों में संक्रामक नहीं होता है। इसमें 25 से 75% मृत्यु दर पायी गयी है।

हालांकि एन्थ्रैक्स सार्वभौमिक समस्या है परंतु इसकी अधिक प्राकृतिक संभावनाएं जन स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं की कमी वाले देशों / क्षेत्रों जैसे मध्य अमरीका, दक्षिण पूर्वी यूरोप, एशिया, अफ्रीका, मध्य पूर्वी देश इत्यादि, में अधिक हैं। भारत में दक्षिणी राज्यों जैसे तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, पांडिचेरी इत्यादि के कुछ भागों में अभी हाल के वर्षों में एन्थ्रैक्स की घटनाएं सामने आयी हैं। पांडिचेरी में इस वर्ष के शुरू में हुई एक संगोष्ठी में आदमियों में एन्थ्रैक्स के मामलों का जिक्र हुआ तथा पिछले 10 वर्षों में पांडिचेरी में लगभग 35 बीमार पाये गये। 1997 में उड़ीसा में भारी वर्षा के कारण उन जन जातियों में मानव एन्थ्रैक्स की खबर मिली है, जो अधिकतर सूखे मांस पर निर्भर रहते हैं क्योंकि अधिक वर्षा के कारण यह मांस संक्रमित हो गया था।

यह उल्लेखनीय है कि आज एन्थ्रैक्स जीवाणु शुष्क रूप में तैयार तथा संग्रहीत किये जा सकते हैं और इनको पाउडर के रूप में हवा में प्रसरित किया जा सकता है जिससे जैविक आतंकवाद के तहत महामारी फैल सकती है। इसलिए परमाणु युद्ध से सस्ता लेकिन भयंकर होने के कारण यह एक चुनौती बन गया है। इससे निपटने के लिए यह ज़रूरी बन गया है कि हर देश 'संक्रामक रोग और उनके निदान' संबंधी प्रयोगशालाओं की क्षमताओं में सुधार लायें, जनस्वास्थ्य सुविधाओं की महत्ता को समझें तथा उनके कार्यकर्ताओं को एन्थ्रैक्स जैसी बीमारियों से निपटने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करें। इस विषय पर अधिक और तीव्रता से शोध कार्य को प्रारंभ करें क्योंकि अभी भी शरीर प्रतिरोधकता / असंक्रमीकरण जैसे मुद्दों की जानकारी तथा टीकों से उनके बचाव संबंधी जानकारी की समझ अपर्याप्त तथा अस्पष्ट है। इसके साथ एन्थ्रैक्स से उद्भाषित होने के बाद रोगनिरोधन के बारे में भी आवश्यक है और एन्थ्रैक्स का शीघ्र पता चलाने के लिए शीघ्र नैदानिक तकनीकों के विकास पर बल दिया जाना ज़रूरी लगता है।

प्रस्तुत अंक जुलाई-सितंबर 2001 अंक है जिसमें खास तौर पर वर्ष 2000 की डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता में पुरस्कृत लेखों का समावेश किया गया है। अंक में अन्य जानकारियां पूर्ववत दी गयी हैं। एक विशेष निवेदन है कि लेखक गण पिछले कुछ अंकों में प्रकाशनार्थ पांडुलिपि (manuscript) तैयार करने हेतु दिये गये निर्देशों का पालन करें। इससे लेख के संपादन में सहायता मिलेगी। इसके अलावा एक और बात है, जैसा कि पहले परिषद की आजीवन सदस्यता केवल 101/- रुपये थी। सभी आजीवन सदस्यों को वर्ष के चार अंक निशुल्क भेजे जाते हैं। पाठकों को यह भी विदित होगा कि पिछले कुछ वर्षों में प्रिंटिंग मूल्य तथा डाक व्यय में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। इसलिए पत्रिका का स्तर बनाये रखते हुए इन्हें आप तक पहुंचाना 'परिषद' पर बड़ा आर्थिक बोझ बनता जा रहा है। एक प्रति की छपाई की लागत लगभग रु. 25/- आती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए उन आजीवन सदस्यों को जो परिषद की पुरानी आजीवन सदस्यता (रु.101/) देकर सदस्य बने हैं, विशेष निवेदन है कि वे वर्तमान आजीवन सदस्यता (रु. 401/-) को देखते हुए अतिरिक्त राशि परिषद के नाम डिमांड ड्राफ्ट से भेजने का कष्ट करें। यह स्वयंसेवी परिषद आपकी अत्यंत आभारी रहेगी। अंक के बारे में अपनी प्रतिक्रियाओं को सदैव की भांति अवश्य भेजते रहें।

– डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2000) में प्रथम पुरस्कार प्राप्त

वर्तमान सदी सुनेगी क्वांटम परिघटनाओं पर आधारित अनुप्रयोगों की अनुगूंज

कपूर मल जैन
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, पुराना वाल्मी परिसर,
कोलार रोड, रवीशंकर नगर पोस्ट आफिस,
पो. बॉ. - 588, भोपाल - 462 016

बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में तकनीकी प्रौद्योगिकी के विकास की गति बहुत ही तीव्र रही है। अब कई नयी-नयी संभावनाएं उभर कर सामने आयी हैं। आज क्वांटम लॉजिक (तर्क) के आधार पर जो नया गणित सामने आ रहा है उससे क्वांटम क्रिप्टोग्राफी (गूढ़लेखिकी), क्वांटम कंप्यूटेशन और क्वांटम टेलीपोर्टेशन सच बन कर सामने आये हैं। हम आशा कर सकते हैं कि वर्तमान सदी में हमें क्वांटम परिघटनाओं पर आधारित विचित्रताओं से भरे विभिन्न अनुप्रयोगों की अनुगूंज सुनाई देगी। ये अनुप्रयोग क्वांटम बायनरी लॉजिक जनित 'क्यूबिट' पर आधारित होंगे जो हमें वित्तीय विनिमय के दौरान जरूरी सुरक्षा की गारंटी प्रदान करेंगे और क्वांटम सुपर कंप्यूटर का निर्माण कर बड़ी-बड़ी गणनाओं में लगने वाले समय को भी कम करेंगे।

बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में जब वैज्ञानिक क्वांटम लोक में पहुंचने की तैयारी कर रहे थे तब सामान्यजन विज्ञान से प्राप्त अपनी क्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि से चमत्कृत थे। मशीनों ने उनके भौतिक सुख-साधनों में अपार वृद्धि की। कोयले की शक्ति, इस्पात की मजबूती और बिजली की खोज के बाद चहुंओर आनंद नजर आ रहा था। विज्ञान की दृष्टि में ब्रह्मांड कारणता (causality) के नियमों से बंधा हुआ और एक घड़ी के अनुसार चलने वाली मशीन मात्र था। तभी एक्स किरण और रेडियोधर्मिता की खोजें हुईं। अचानक 1898 में एक धमाका हुआ जब जे. जे. टॉमसन को इलेक्ट्रॉन के रूप में परमाणु की दुनिया से एक संदेश मिला। इस संदेश को डिकोड करते हुए वैज्ञानिकगण अत्यंत सूक्ष्म जगत यानि क्वांटम लोक में जा पहुंचे।

बीसवीं सदी के आरंभ में इस लोक को समझने के लिए क्वांटम यांत्रिकी के रूप में जिस गणित का विकास हुआ वह बड़ा ही विचित्र प्रतीत होता है। इस गणित के आधार कारणता की बजाय 'संभावना' यानि 'प्रायिकता' के नियमों पर निर्भर करते हैं। इसीलिए इस गणित से जो तथ्य निकले वे भी कम चौंकाने वाले साबित नहीं हुए। जिस इलेक्ट्रॉन को हमने कैथोड किरणों के एक कण के रूप में देखा और स्पेक्ट्रल अवलोकनों के आधार पर अप्रत्यक्ष तरीके से उसके गुणों का निर्धारण किया उसे हम गणित की आंखों से देखने में सफल हुए। गणित की दृष्टि तर्क की दृष्टि होती है और इसीलिए किसी भी पूर्वाग्रह से दूर होती है। इससे हम यह समझ सके कि यह संसार भले ही विचित्र दिखता हो लेकिन वहां एक दुर्लभ और अनमोल खज़ाना भी छिपा हुआ है।

कारणता के नियमों से न बंधे रहने के कारण सूक्ष्म जगत् में घटने वाली घटनाओं को समझना आसान नहीं होता। इस जगत में समान कण, एक सी परिस्थितियों में रहने के बावजूद भी भिन्न-भिन्न तरीके से व्यवहार करते हैं। एक समय में उनके एक साथ रहने की जानकारी के

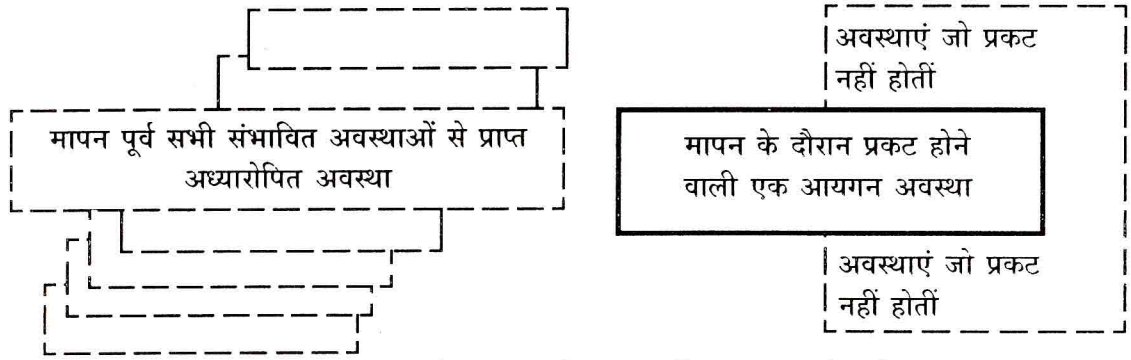

चित्र-1 : क्वांटम निकाय की अवस्था के संबंध में बहुमान्य कोपनहेगन व्याख्या

बावजूद कोई भी यह निश्चितता के साथ नहीं कह सकता कि अगले ही क्षण वे कहां होंगे । यह अविश्वसनीय लेकिन एक कठोर सत्य है । इसलिए क्वांटम लोक में हम उनके एक साथ और एक ही जगह पर पाये जाने की संभावना ही प्रकट कर सकते हैं । ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इस क्वांटम जगत् में अनिश्चितता (uncertainty), स्वच्छंदता (randomness) और अनिर्धार्यता (indeterminacy) का बोलबाला है । और, इसे समझने के लिए 'कॉमन सेंस' काम नहीं आता । इस तरह इस लोक के बारे में इस तरह की कल्पना मनुष्य को न केवल रोमांचित करती है बल्कि इसकी वैधता को संदेह के घेरे में भी लाती है ।

क्वांटम निकाय किसी भी अवस्था में रह सकता है जिसे मापन के पूर्व जानना कठिन है । हां, बार-बार माप कर यह अवश्य जाना जा सकता है कि उस नियम के किसी खास अवस्था में मिलने की संभावना कितनी है । इसीलिए इस निकाय की पूर्ण अवस्था को उसकी सभी संभव अवस्थाओं से मिल कर बना होना माना जा सकता है जिनमें विभिन्न मापनों के दौरान उसके पाये जाने की संभावना होती है । गणितीय भाषा में क्वांटम निकाय की पूर्ण अवस्था को तरंग फलन के रूप में अभिव्यक्त करते हैं । डिराक ने इसे सदिश मानते हुए केट सदिश ' $|>$' कहा । क्वांटम निकाय की अवस्था के संबंध में प्रयुक्त प्रायिकता (probability) वाली व्याख्या को 1927 में मैक्स बार्न ने प्रस्तुत किया । इसके विश्लेषण की तार्किक परिणिति क्वांटम यांत्रिकी की 'कोपनहेगन व्याख्या' के रूप में सामने आयी । इसके अनुसार मापने के दौरान वह तरंग फलन या केट सदिश जो सभी संभावित अवस्थाओं के अध्यारोपण से बना होता है । एकाएक अदृश्य होकर निकाय को किसी एक खास अवस्था, जिसे 'आयगन अवस्था' कहते हैं, में ला देता है और यही मापन के दौरान प्रकट होती है । यह कोपनहेगन व्याख्या तार्किक दृष्टि से उचित प्रतीत होने के बावजूद भी आसानी से गले नहीं उतरती । आइंस्टाइन और श्रोडिंगर के साथ भी यही हुआ । वे इस तरह की व्याख्या से असहमत थे । इन वैज्ञानिकों ने क्वांटम यांत्रिकी की उपर्युक्त 'कोपनहेगन व्याख्या' को चुनौती देने के लिए कई वैचारिक प्रयोगों के परिणाम और उनसे उपजे तर्क वैज्ञानिक जगत के सामने रखे । लेकिन बोहर ने उन सबको अपने प्रति-तर्कों से दर-किनार करते हुए क्वांटम यांत्रिकी की 'कोपनहेगन व्याख्या' को प्रतिस्थापित किया ।

इस यांत्रिकी के विकास के बाद लेसर जैसे शक्तिशाली प्रकाश स्रोत को विकसित कर पाने की संभावना जगी और देखते ही देखते वैज्ञानिक लेसर बनाने में कामयाब हो गये । शीघ्र ही उन्होंने पदार्थों में मुक्त इलेक्ट्रॉनों की संख्या और उनकी गति को नियंत्रित करने के तरीके खोज निकाले और इलेक्ट्रॉनिकी को विकसित किया । इलेक्ट्रॉनिकी पर आधारित प्रौद्योगिकी तथा कंप्यूटर के आने और मशीनों के स्वचालित होने से हमारी जीवन शैली में आमूलचूल परिवर्तन आया । उच्च स्तरीय तकनीकी विकास के कारण वैज्ञानिकों ने एक मिलीमीटर के अरबवें-खरबवें भाग से भी छोटी जगह को अपनी इच्छानुसार बदल कर

आण्विक दर्जीगिरी (molecular tailoring) करनी शुरु कर दी जिससे बायोजेनेटिक इंजीनियरी संभव हो गयी। रेडियो नेटवर्क पर आधारित संचार व्यवस्था में क्रांतिकारी बदलाव ला कर दुनिया में 'सूचना-महामार्ग' विकसित कर दिया। ये सब भौतिकीय समझ के स्तर पर अव्यवहारिक प्रतीत होती, लेकिन प्रायोगिक स्तर पर खरी उतरती क्वांटम यांत्रिकी के अनुप्रयोगों का सुखद परिणाम है।

इस सफलता से अभिभूत वैज्ञानिक क्वांटम यांत्रिकी के मूल तथ्यों को समझने की दिशा में गंभीरता से विचार करने लगे। सर्वप्रथम वैज्ञानिकों ने इस यांत्रिकी में प्रयुक्त गणित के तर्क को समझने हेतु 'कोपनहेगन व्याख्या' का प्रतिकार करने हेतु प्रस्तुत किये गये उन वैचारिक प्रयोगों पर ध्यान देना प्रारंभ किया जिन्हें 1930 और 1940 के मध्य सामने लाया गया था। जैसे-जैसे तकनीकी विकास होते गये, निर्दिष्ट प्रयोग भी संपन्न होते गये। इन प्रयोगों से प्राप्त परिणामों ने क्वांटम यांत्रिकी की 'कोपनहेगन व्याख्या' को न केवल सही ठहराया वरना इनकी सफलता से अब क्वांटम यांत्रिकी के कई ऐसे अनुप्रयोगों की संभावनाएं सामने आ रही हैं जो आने वाले वर्षों में सबको चौंकाने वाली होंगी।

तर्क और क्वांटम तर्क :

तर्क हमारे रोजमर्रा की जिंदगी में जाने-अनजाने मौजूद हैं। हम अक्सर वादविवाद के जरिये यह स्थापित करते हैं कि कोई कथन सत्य है अथवा असत्य। उदाहरणार्थ, कोई सेब मीठा है या वह मीठा नहीं है। उपर्युक्त कथन का दूसरा हिस्सा पहले हिस्से का ठीक उल्टा है। गणित की भाषा में हम पहले हिस्से को 'A' से इंगित करते हैं तथा दूसरे हिस्से को 'A' से प्रदर्शित करते हैं। इसी तरह जब हम दो अलग-अलग कथनों ('A' तथा 'B') को तार्किक दृष्टि से देखते हैं तो पाते हैं कि इन्हीं दो तरीकों से मिला कर एक कथन प्राप्त किया जा सकता है। पहले तरीके में प्राप्त कथन तभी सत्य होगा जब कथन 'A' तथा 'B' दोनों ही सत्य होंगे लेकिन दूसरे तरीके में प्राप्त कथन किसी भी एक कथन 'A' अथवा 'B' के सत्य होने पर ही सत्य हो जाता है। उपर्युक्त तरीकों को हम तार्किक बीजगणितीय भाषा में क्रमशः 'अथ' यानि 'एंड' (AND) तथा 'अपि' यानि 'ऑर' (OR) लॉजिक कहते हैं। इन्हें क्रमशः (A.B) तथा (A+B) से प्रदर्शित करते हैं।

तर्क पर आधारित प्रचलित गणित :

जैसा कि हमने देखा कि कोई भी कथन दो प्रकार का हो सकता है जैसे सत्य या असत्य। इन्हें हम दो अवस्थाओं वाले किसी निकाय से दर्शा सकते हैं। माना कि इसकी पहली अवस्था '1' तथा दूसरी अवस्था '0' है। ये अवस्थाएं दो अलग-अलग विद्युत वोल्टेज के स्तर से भी दर्शायी जा सकती हैं। यहां '1' सत्य कथन है और '0' असत्य कथन को दर्शाता है।

अब मान लीजिए हमारे पास दो कथन हैं जिन्हें हम 'इनपुट' कहते हैं। दोनों कथन या तो सच हो सकते हैं या दोनों असत्य। ऐसा भी हो सकता है कि दोनों कथनों में से कोई भी एक कथन सत्य हो। इस तरह हमारा इनपुट 1,1; 0,0; तथा 0,1 में से कोई भी हो सकता है तथा एंड (AND, A.B), ऑर (OR, A+B) तथा इनकी उल्टी क्रमशः नेंड (NAND, A.B) तथा नॉर (NOR, A+B) और नॉट (NOT, A तथा B), एक्सक्लूसिव (EXCLUSIVE यानि एकनिष्ठ) ऑर (X- OR, $A+B$) तथा एक्सक्लूसिव नॉर (X- NOR, $A+B$) वे मौलिक लॉजिक हैं जिनका उपयोग कर हम आउटपुट ज्ञात करते हैं। आउटपुट का मान इस पर निर्भर करता है कि कौन सी मौलिक लॉजिक प्रयुक्त की गयी है। इनपुट से आउटपुट प्राप्त करने के लिए हम विभिन्न तालिकाएं तैयार करते हैं जिन्हें हम ट्रुथ टेबिल के नाम से पुकारते हैं। इन ट्रुथ टेबिल्स से विभिन्न 'लॉजिक गेट' बनाये जाते हैं जो कंप्यूटर निर्माण के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इन्हें 'गेट' इसलिए कहते हैं क्योंकि ये अपने में से निर्दिष्ट तर्क के अनुसार ही सिग्नल यानि सूचना को गुजरने देते हैं।

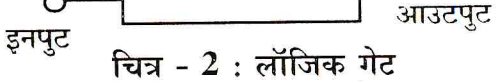

चित्र - 2 : लॉजिक गेट

दो इनपुट वाले एंड गेट में दोनों के '1' होने पर ही आउटपुट '1' मिलता है जबकि 'ऑर' गेट में दोनों के

तालिका-1 :ट्रुथ टेबिल

इनपुट		आउटपुट							
		AND	OR	NAND	NOR	NOT		X-OR	X-NOR
A	B	A.B	A+B	A.B	A+B	A	B	A+B	A+B
0	0	0	0	1	1	1	1	0	1
0	1	0	1	1	0	1	0	1	0
1	0	0	1	1	0	0	1	1	0
1	1	1	1	0	0	0	0	0	1

1' होने पर तो आउटपुट '1' मिलता ही है लेकिन जब भी इनमें से कोई एक इनपुट '1' होता है, आउटपुट '1' मिल जाता है। 'नेंड' (NAND) में एंड से तथा 'नॉर' (NOR) में 'ऑर' से उल्टा यानि '1' के स्थान पर '0' के स्थान पर '1' आउटपुट मिलता है। 'नॉट' (NOT) में मिलने वाला आउटपुट इनपुट से उल्टा होता है। 'एक्स-क्लूसिव ऑर (X-OR)' में किसी एक इनपुट के '1' तथा दूसरे के '0' होने पर ही आउटपुट '1' मिलता है तथा 'एक्सक्लूसिव नॉर' (X-NOR) का आउटपुट 'एक्स-क्लूसिव ऑर' से उल्टा होता है।

उदाहरण के लिए, माना कि A तथा B इनपुट हैं तो विभिन्न लॉजिक गेट से मिलने वाले आउटपुट से तैयार होने वाला ट्रुथ टेबिल तालिका-1 अनुसार होगा।

ट्रुथ टेबिल और अर्द्धचालक :

पदार्थ को उनके चालकीय गुणों के आधार पर चार भागों में बांटा जा सकता है। ये हैं कुचालक, सुचालक, अर्द्धचालक और अतिचालक। अर्द्धचालकों की समझ और उनके तकनीकी अनुप्रयोगों ने तार्किक तरीके से बने ट्रुथ टेबिल को अत्यंत उपयोगी बना दिया। इन अर्द्धचालकों को तकनीकी दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाने के लिए शुद्ध अर्द्धचालकों (जैसे सिलिकॉन) में कुछ विशिष्ट अशुद्धियां (जैसे एंटीमनी और बोरॉन) मिला कर इन्हें इलेक्ट्रॉनों की अधिकता वाले एन-प्रकार (n-type) के तथा इलेक्ट्रॉनों की कमी वाले पी-प्रकार (p-type) के अर्द्धचालकों में बदला जाता है। इन विशिष्ट अर्द्धचालकों के उपयोग से कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण इलेक्ट्रॉनिक घटक डायोड और ट्रांजिस्टर, जो क्रमशः पी-एन संधि और पी-एन-पी या एन-पी-एन संधियों से मिल कर बने होते हैं, के रूप में सामने आये।

पी-एन संधि से मिल कर बने इलेक्ट्रॉनिक डायोड की एक मजेदार विशेषता होती है। इसकी एन-साइड को अगर पी-साइड की तुलना में ऋणात्मक बना दिया जाय तो यह अपने में से विद्युत धारा को प्रवाहित होने देता है अन्यथा नहीं। चूंकि एन-साइड में इलेक्ट्रॉनों का बाहुल्य होता है अतः जब इसे ऋणात्मक बना दिया जाता है तब यह अपनी ओर से विकर्षण के कारण इलेक्ट्रॉनों को पी-साइड की ओर धकेल कर घटक को चालक बना देता है लेकिन इस साइड के धनात्मक होने की स्थिति में यह घटक चालक नहीं रह पाता। डायोड की यह विशेषता ही इसे तर्क पर आधारित गणित के अनुप्रयोग हेतु महत्वपूर्ण बनाती है। उदाहरण के लिए हम 'एंड' तथा 'ऑर' गेट के लिए बने ट्रुथ टेबिल पर विचार करते हैं। 'एंड' तथा 'ऑर' गेट में दो डायोड प्रयुक्त होते हैं। 'एंड' गेट में इन्हें फारवर्ड बायस की स्थिति में रखते हैं यानि इसके पी-सिरे को धनात्मक रखते हैं। जैसे ही दोनों इनपुट '1' होते हैं, ये डायोड रिवर्स बायस की स्थिति में आते हुए चालक नहीं रह पाते हैं जिससे आउटपुट '1' हो जाता है। लेकिन इनमें से किसी एक के भी '0' होने पर आउटपुट हमेशा '0' मिलता है क्योंकि इस स्थिति में कोई न कोई डायोड अवश्य ही चालक रहता है। (चित्र-3)

'ऑर' गेट में दोनों डायोडों को इस तरह समंजित करते हैं कि किसी भी या दोनों इनपुट के '1' होने की

A	A	A.B
0	0	0
0	0	0
1	1	0
1	1	1

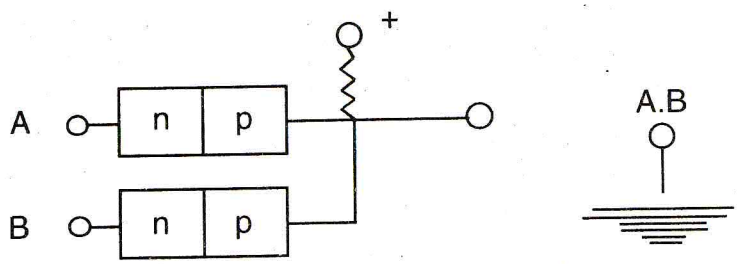

चित्र - 3 : 'एंड' गेट के लिए बने ट्रुथ टेबिल के अनुसार इलेक्ट्रॉनिक परिपथ

A	A	A+B
0	0	0
0	1	1
1	0	1
1	1	1

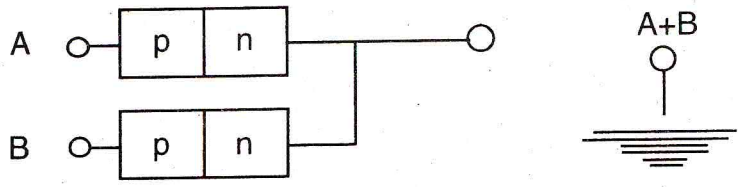

चित्र - 4 : 'आर' गेट के लिए बने ट्रुथ टेबिल के अनुसार इलेक्ट्रॉनिक परिपथ

स्थिति में डायोड चालक बन जाते हैं जिससे आउटपुट '1' हो जाता है। लेकिन दोनों इनपुट के '0' होने पर आउटपुट हमेशा '0' मिलता है। (चित्र-4)

इस तरह किन्हीं भी डाटा को पहले विद्युत सिग्नल धनात्मक (1) तथा ऋणात्मक अथवा ग्राउंड (0) के रूप, जिसे तकनीकी भाषा में 'बायनरी' रूप कहते हैं, में बदल लिया जाता है। उदाहरण के लिए हमारे परिचित '2', '3,' '7' और '8' 'बायनरी रूप' में क्रमशः '10,' '11', '111' और '1000' के रूप में बदल जाते हैं। फिर इन 'बायनरी' डाटा को प्रोसेस करने के लिए ट्रुथ टेबिल की सहायता से उपयुक्त 'गेट' का चयन कर आवश्यक इलेक्ट्रॉनिक परिपथों का विकास कर लिया जाता है।

यह सर्व विदित है कि इलेक्ट्रॉनिक परिपथों और कंप्यूटर के निर्माण में अर्द्धचालक से बने विभिन्न घटकों को प्रयुक्त किया जाता है। ये अर्द्धचालक क्वांटम सिद्धांत पर कार्य करते हैं। इसमें सूचना के कण '0' अथवा '1' में से किसी एक निश्चित अवस्था में रहते हैं और इन दोनों अवस्थाओं के बीच एक ऊर्जा बैरीयर होता है। इस सूचना-कण को एक 'बिट' (bit) कहते हैं जो अंग्रेजी द्वि-शब्द बायनरी 'binary digit' के पहले शब्द के 'bi' तथा अंतिम शब्द के 't' से बना है।

क्वांटम तर्क पर आधारित एक नया गणित :

अब तक जिस लॉजिक की चर्चा हमने की है वह ठीक से समझ में आती है लेकिन क्वांटम निकाय के लिए इस तरह की लॉजिक की चर्चा संभव नहीं। यहां दो अवस्थाओं में रहने वाला क्वांटम निकाय किस अवस्था में है, इसे पहले से नहीं जाना जा सकता है। यद्यपि गणितीय दृष्टि से इस निकाय की अवस्था दोनों अवस्थाओं के अध्यारोपण से प्राप्त अवस्था मानी जा सकती है और यही सोच क्वांटम यांत्रिकी की कोपनहेगन व्याख्या का आधार है।

क्वांटम निकाय के अध्यारोपण से प्राप्त अवस्था के अर्थ को समझने के दौरान फॉन न्यूमैन (von Newmann) और बिर्कहॉफ (Birkhoff) द्वारा खोजे गणित पर आधारित एक सर्वथा नया विचार उभरा जिसने 'क्वांटम बायनरी लॉजिक' को जन्म दिया।

क्वांटम बायनरी लॉजिक - पृष्ठभूमि :

बीज गणित में कुछ गणितीय राशियों के बीच निम्नांकित संबंध हैं :

$$A . (B+C) = (A. B) + (A. C)$$

उपर्युक्त समीकरण में प्रयुक्त गणितीय राशियों को हम भौतिकीय कथनों से संबंधित कर तार्किक विश्लेषण

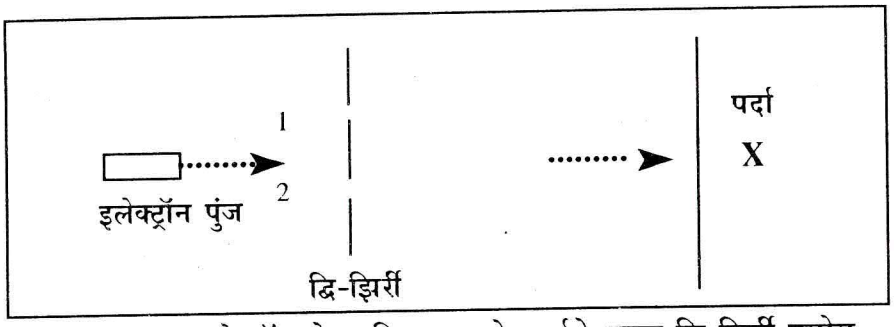

चित्र - 5 : इलेक्ट्रॉन के व्यतिकरण को दर्शाने वाला द्वि-झिर्री प्रयोग

द्वारा समझने का प्रयास करते हैं। माना कि A : इलेक्ट्रॉन के लिए व्यतिकरण की परिघटना को दर्शाने हेतु किये जाने वाले मशहूर द्वि-झिर्री वाले प्रयोग के दौरान पर्दे के बिंदु X पर इलेक्ट्रॉन के आने को दर्शाता है । B : इलेक्ट्रॉन झिर्री क्रमांक 1 से गुजरता है तथा C : इलेक्ट्रॉन झिर्री क्रमांक 2 से गुजरता है । अब हम देखते हैं कि इसका अर्थ क्या हो सकता है ? (चित्र-5)

जहां तक उपर्युक्त समीकरण के बायीं ओर का सवाल है उसके अनुसार इलेक्ट्रॉन पर्दे के बिंदु X पर आता है और इलेक्ट्रॉन दो में से कम से कम एक झिर्री से अवश्य गुजरता है । यह निष्कर्ष हमारे प्रायोगिक परिणामों से मेल खाता है । लेकिन समीकरण के दायीं ओर से कुछ अलग ही बातें सामने आती हैं । इसके अनुसार इलेक्ट्रॉन पर्दे के बिंदु X पर आता है और झिर्री क्रमांक 1 से गुजरा है अथवा इलेक्ट्रॉन पर्दे के बिंदु X पर आता है और झिर्री क्रमांक 2 से गुजरा है । इन दो प्रस्तावों में से कोई एक सत्य हो सकता है, दोनों एक साथ कदापि नहीं । परंतु यह निष्कर्ष हमारे प्रायोगिक परिणामों से मेल नहीं खाता है क्योंकि इन कथनों की सत्यता को बिना जासूसी किये नहीं जाना जा सकता और जासूसी बिना इलेक्ट्रॉन को विक्षुब्ध किये या उसकी अवस्था को बदले संभव नहीं । इसका अर्थ यह निकला कि क्वांटम यांत्रिकी में उपर्युक्त तर्क-समीकरण की दोनों साइड समान नहीं हैं और यही क्वांटम तर्क की सचाई है ।

क्वांटम तर्क से उत्पन्न 'क्वांटम बायनरी लॉजिक' :

न्यूमैन और बिर्कहॉफ ने देखा कि क्वांटम यांत्रिकी के गणित का तर्क बुलियन के तर्क बीजगणित के अनुरूप तो नहीं है लेकिन इसका स्वयं का अपना पृथक तर्क और बीज गणित है ।

क्वांटम बायनरी लॉजिक में शुरुआत 'क्यूबिट' (qubit यहां बिट के आगे qu का प्रयोग quantum को दर्शाने हेतु किया गया है) से होती है । यह क्वांटम बायनरी लॉजिक में सूचना की सबसे छोटी इकाई है । इसके अनुसार सूचना का एक कण दो अवस्था वाले क्वांटम निकाय की किसी भी एक अवस्था 'केट एक अर्थात $|1>$' अथवा 'केट शून्य अर्थात $|0>$' में रह सकता है । चूंकि यहां निकाय की अवस्था को निश्चितता पूर्वक नहीं जाना जा सकता है अतः इसकी संपूर्ण अवस्था इन अवस्थाओं के अध्यारोपण से प्राप्त अवस्था होती है । इस तरह 'क्यूबिट' के आगमन से सूचना के क्षेत्र में अध्यारोपित अवस्था में सूचना को कोडित करने की एक नयी संभावना जगी है ।

'क्यूबिट' को फोटॉन की दो ध्रुवित अवस्थाओं (क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर) के द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है । इस तरह के फोटॉन के जोड़ों को प्रयोगशाला में प्राप्त करने के लिए पराबैंगनी प्रकाश का उपयोग किया जाता है । जब यह फोटॉन बेरियम बोरेट के क्रिस्टल से टकराता है तब यह कम आवृत्ति वाले दो सममित फोटॉन के जोड़े के रूप में प्रकट होता है जिनके ध्रुवण की दिशा एक दूसरे के लंबवत होती है । यद्यपि मापने के पूर्व यह निश्चितता पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इस क्वांटम घटना से प्राप्त फोटॉन के जोड़े में से कौन फोटॉन किस दिशा में ध्रुवित है । हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि ये अलग-अलग ध्रुवित अवस्थाओं में हैं । (चित्र-6)

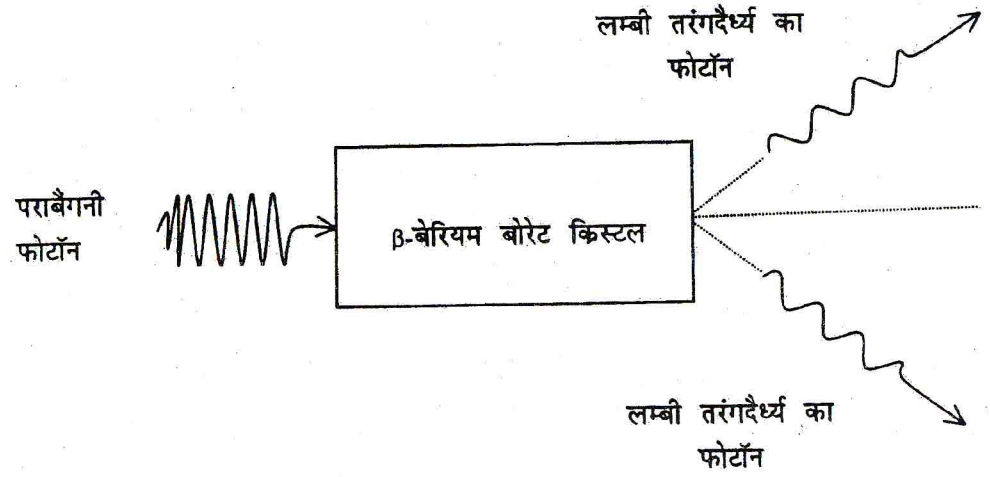

चित्र - 6 : दो ध्रुवित अवस्थाओं वाले सममित फोटॉन के जोड़ों को प्राप्त करने के लिए प्रयोग

उपर्युक्त फोटॉन के जोड़े में फोटॉन के ध्रुवण की दिशा जानने के कई तरीके हो सकते हैं।

माना हमारे पास दो क्वांटम कणों का एक जोड़ा है। इनमें से प्रत्येक एक बिट सूचना को ले जा सकता है। जहां चिरसम्मत प्रचलित तरीके के अनुसार प्रथम और द्वितीय कणों के जमावट की चार स्पष्ट संभावनाएं (0,0), (0,1), (1,0) और (1,1) बनती हैं। इसी तरह क्वांटम बायनरी लॉजिक के अनुसार भी चार संभावनाएं ही $|0\rangle|0\rangle$, $|0\rangle|1\rangle$, $|1\rangle|0\rangle$ और $|1\rangle|1\rangle$ बनती हैं। यहां $|0\rangle$ अगर फोटॉन की क्षैतिज ध्रुवित अवस्था दर्शाता है तो $|1\rangle$ फोटॉन की क्षैतिज ऊर्ध्वाधर अवस्था दर्शाता है।

चूंकि क्वांटम जगत में यह जानना संभव नहीं कि कौन सा कण यानि फोटॉन किस अवस्था में है, अतः यहीं अन्य वैकल्पिक क्यूबिट अवस्थाओं पर विचार करना जरूरी होता है जिन्हें उपर्युक्त अवस्थाओं के अध्यारोपण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, क्वांटम बायनरी लॉजिक में सूचना को अलग-अलग कणों में संरक्षित नहीं किया जा सकता। इसमें सूचना को दोनों कणों से बनी अध्यारोपित अवस्थाओं में ही संरक्षित किया जा सकता है। अध्यारोपण द्वारा दूसरे में उलझी हुई निम्न चार क्यूबिट अवस्थाएं प्राप्त होती हैं :

$$|0\rangle\ |1\rangle + |1\rangle\ |0\rangle$$
$$|0\rangle\ |1\rangle - |1\rangle\ |0\rangle$$
$$|0\rangle\ |0\rangle + |1\rangle\ |1\rangle$$
$$|0\rangle\ |0\rangle - |1\rangle\ |1\rangle$$

यहां क्रम का बना रहना जरूरी है। अवस्था $\{|0\rangle|1\rangle + |1\rangle|0\rangle\}$ में दो अवस्थाएं अध्यारोपित हुई हैं। पहली अवस्था में पहला क्यूबिट $|0\rangle$ है तो दूसरा $|1\rangle$ जबकि दूसरी अवस्था में पहला क्यूबिट $|1\rangle$ है तो दूसरा $|0\rangle$ है। यह सूचना को स्पष्ट और सीधे संप्रेषित करने के बजाय जाल में उलझा कर भेजने के समान है इसीलिए इसे समझ कर भेद पाना कठिन है।

सूचना संप्रेषण और क्वांटम बायनरी लॉजिक :

हम सूचना संप्रेषण के पारंपरिक तरीके को एक उदाहरण से समझने का प्रयत्न करते हैं। माना कि राम, रहीम को एक संदेश गुप्त रूप से भेजना चाहता है। इसके लिए राम बिट में बिट को रैंडम तरीके से जोड़ते हुए संदेश तैयार कर रहीम को भेजता है। संदेश मिलने पर रहीम इसका तब तक कुछ भी अर्थ निकाल नहीं पाता जब तक कि उसे राम द्वारा सूचना को रैंडम तरीके से जोड़ने की कुंजी का पता नहीं लगता। इस तरह यदि राम

और रहीम अगर मिल कर अपने बीच की रैंडम कुंजी को विकसित कर लेते हैं तब वे आपस में कभी भी गुप्त रूप से संदेशों का आदान प्रदान कर सकते हैं। लेकिन ऐसी स्थिति में कोई तीसरा व्यक्ति राम और रहीम द्वारा परस्पर आदान-प्रदान किये जा रहे गुप्त संदेशों का सूक्ष्म अध्ययन कर रैंडम कुंजी को ज्ञात कर गुप्त सूचना को समझ सकता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि सुरक्षित गुप्त संप्रेषण के लिए राम और रहीम अपनी रैंडम कुंजी को हर बार बदलते रहें। यह सूचना संप्रेषण हेतु प्रयुक्त होने वाला 'वन टाइम पेड सिस्टम' (एक बार नियत प्रणाली) कहलाता है।

आज इस सूचना क्रांति के इस दौर में जहां टेली शॉपिंग, टेली बैंकिंग इत्यादि इंटरनेट के जरिये हो रही है, वहां 'वन टाइम पेड सिस्टम' से काम करना संभव नहीं है और एक रैंडम कुंजी के बार-बार प्रयोग से क्रेडिट कार्ड और बैंक के खाते के नंबर असामाजिक तत्वों से सुरक्षित नहीं रख़े सकते हैं।

इस समस्या के हल के लिए 1976 में 'व्हीट फिल्ड डिफे' और 'मार्टिन हेलमॅन' ने एक 'लोक कुंजी क्रिप्टो सिस्टम' (public key crypto-system) का सुझाव दिया जो कि एक-दिशीय फलन (one way function) पर आधारित है। यह कुंजी फलन f(x) तथा चर x पर निर्भर करती है। x से f(x) को प्राप्त करने के कई तरीके हो सकते हैं लेकिन f(x) से x को प्राप्त करना आसान नहीं है। यह निष्कर्ष अधिक सुरक्षित लोक कुंजी (public key) के निर्माण में अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ।

कैसे काम करती है यह लोक कुंजी ? :

माना कि राम अपनी प्राइवेट कुंजी x का चयन करता है तथा इससे पब्लिक कुंजी f(x) का निर्माण कर इसे प्रसारित करके कुछ इंतजार करता है। रहीम इस कुंजी को प्राप्त कर इसके अनुसार अपने संदेश को तैयार कर पुनः राम के पास भेजता है। राम अपनी प्राइवेट कुंजी x की सहायता से इस संदेश को डिकोड कर लेता है। लेकिन तीसरे व्यक्ति जिसके पास पब्लिक कुंजी f(x) तो है लेकिन उसके लिए प्राइवेट कुंजी x का पता लगाना एक दुष्कर कार्य होगा क्योंकि इसके लिए उसे f(x) का गुणनखंड (factorise) कर x को जानने का प्रयास करना होगा। आजकल इस तकनीक का उपयोग इंटरनेट पर भेजी जाने वाली सूचनाओं की सुरक्षा हेतु किया जाता है।

क्वांटम बायनरी लॉजिक के उपयोग की संभावना :

चूंकि क्वांटम बायनरी लॉजिक इस तथ्य का लाभ उठाती है कि जब कभी भी किसी क्वांटम निकाय को मापा जाता है यह निकाय को विक्षुब्ध कर देती है। क्वांटम निकाय की यह सीमा ही यहां अत्यंत महत्वपूर्ण बन जाती है। यह राम और रहीम को आपस में बिना मिले या संपर्क किये अपने लिए एक रैंडम सुरक्षित कुंजी का निर्माण करने में मदद करती है। इसे सर्वप्रथम 1984 में 'चार्ल्स बेनेट' तथा 'गिलिस ब्रेसर्ड' ने प्रस्तावित किया। इस तकनीक में राम और रहीम दो संचार चैनलों से संपर्क में रहते हैं। इनमें से एक में क्यूबिट को प्रकाश तंतुओं की मदद से संप्रेषित किया जाता है जिसे पब्लिक चैनल कहा जाता है। राम अपने संदेश को फोटॉन की ध्रुवित अवस्थाओं '0' तथा '1' के रूप में कोडित कर भेजता है। रहीम इसे डिकोड करने के लिए जिन फिल्टरों का प्रयोग करता है वे किसी भी स्थिति में हो सकते हैं। यह जरूरी नहीं कि वे राम के द्वारा प्रयोग में लाये गये फिल्टरों के ही क्रम में हों। इस तरह राम और रहीम दोनों के ही फिल्टरों के क्रम रैंडम होंगे।

अब जब संदेश को भेजा जाता है, रहीम हर फोटॉन की ध्रुवित अवस्था को अपने फिल्टरों के क्रम को रिकॉर्ड कर नोट करता जाता है कि फिल्टर को उसने कब और किस स्थिति (ऊर्ध्वाधर V, क्षैतिज H, विकर्णीय) में प्रयुक्त किया है। राम यही रिकॉर्ड संदेश प्रेषित करते समय रखता है।

तालिका-2 : संदेश संप्रेषण के दौरान राम और रहीम द्वारा प्रयुक्त फिल्टर की स्थितियां।

राम	रहीम	
V/H संदेश 01	V/H वही संदेश 01	विकर्णीय स्थिति (Diagonal), संदेश 11 या 00 (समान प्रायिकता के साथ) जिनमें से कुछ संदेश वही होंगे जो राम ने भेजे थे और कुछ अलग।

अब रहीम पब्लिक चैनल के माध्यम से राम को स्वयं द्वारा प्रयुक्त फिल्टरों के क्रम को प्रेषित करेगा। राम इसके बाद अपने द्वारा प्रयुक्त फिल्टरों के क्रम के साथ तुलना कर उसे रहीम को संदेश भेज कर यह बतलायेगा कि कब दोनों रिकॉर्ड समान हैं और कब नहीं। इस तरह, एक बार फिर वह वास्तविक संदेश को रहीम के पास भेजता है। राम और रहीम के पास इस प्रकार एक-एक सुरक्षित क्रम तैयार हो जाता है जो 'वन टाइम पेड सिस्टम' के समान होता है।

अब अगर कोई तीसरा व्यक्ति इस गुप्त संदेश के बारे में जानना चाहता है तब वह क्या करेगा ? सर्वप्रथम वह पब्लिक कुंजी का पता लगायेगा। इसके बाद वह क्वांटम चैनल से भेजे गये संदेश को पाने की चेष्टा केबल को काट कर करेगा। इस संदेश को पढ़ कर वह इस संदेश को आगे रवाना करेगा। लेकिन ऐसा करने के लिए वह अपने फिल्टरों के क्रम का उपयोग कर फोटॉन के साथ छेड़खानी करेगा जिससे संदेश बदल जायेगा जिसे राम द्वारा ज्ञात कर लिया जायेगा।

यह प्रक्रिया अत्यंत क्लिष्ट है। इसका पहला प्रोटो टाइप आई. बी. एम. ने 1989 में तैयार किया था। इसके साथ सबसे बड़ी समस्या संदेश को प्रवर्द्धित (amplify) नहीं कर पाना है क्योंकि प्रवर्द्धित किये जाने का मतलब तीसरे अवांछित व्यक्ति की उपस्थिति के समान ही है जो व्यवधान कर संदेश को बिगाड़ देता है।

क्वांटम कंप्यूटिंग :

क्वांटम बायनरी लॉजिक पर यदि नजर डालें तो यह ज्ञात होता है कि क्वांटम सिद्धांत में हमारे संसार के साथ-साथ अन्य सभी वैकल्पिक और संभावित संसार भी समाहित रहते हैं। ये मापन प्रक्रिया को अपनाने तक आपस में अंतःक्रिया करते रहते हैं। मापन प्रक्रिया संपन्न होने पर किसी एक विशिष्ट संसार के दर्शन होते हैं तथा शेष अदृश्य रहते हैं। यह क्वांटम यथार्थ चिर-परिचित यथार्थ से काफी भिन्न प्रतीत होता है। इस विशिष्टता को प्रकाश में लाने का श्रेय ह्यूज एवरेट III (1957) को जाता है। उनके अनुसार ये सारे वैकल्पिक संसार एक साथ रहते हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं जब तक कि उनको बाधित नहीं किया जाता है। मापन से उत्पन्न बाधा निकाय को किसी विशिष्ट अवस्था में प्रकट करा देती है। इस तरह जिस संसार को हम देखते हैं वह वास्तव में न मापे जा सकने वाले बहुत ही जटिल यथार्थ का मात्र एक पहलू है। क्वांटम गणना के विचार के पीछे यह तर्क काम करता है कि जिन अदृश्य संसारों को क्वांटम निकाय अपने में छिपाये रहता है वे सब हमारे लिए काम करें।

हमने पूर्व में देखा है कि क्यूबिट में सूचना को क्वांटम यांत्रिकीय तरीके से संग्रहित कर रखा जा सकता है। हम जानते हैं कि कोई भी क्यूबिट किसी निश्चित अवस्था में नहीं रहता है। इसी कारण यहां सूचना दो क्यूबिट्स के आपसी संबंध में छिपी होती है। अगर हम एवरेट की बहु-संसार वाली व्याख्या (many world interpretation) को गंभीरता से लेते हैं तब यहां दो अवस्थाओं का अध्यारोपण वास्तव में दो अलग-अलग समानांतर संसारों को प्रदर्शित करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि दो क्यूबिट से बनी 'मेमोरी' 2^2 यानि कुल 4 संख्याओं ($|0\rangle\ 0\rangle + |1\rangle\ |0\rangle + |0\rangle\ |1\rangle + |1\rangle\ |1\rangle$) को एक साथ एक समय में संग्रहित कर लेती है। यह परंपरागत तरीके से काफी भिन्न है जो एक समय में चार में से केवल एक संख्या ($|0\rangle\ |0\rangle$ अथवा $|1\rangle\ |0\rangle$ अथवा $|0\rangle\ |1\rangle$ अथवा $|1\rangle\ |1\rangle$) को ही संग्रहित करती है।

क्वांटम कंप्यूटर में सभी संख्याओं पर एक साथ गणितीय संक्रिया (mathematical operation) किये जाने की बात होती है। दूसरे शब्दों में, क्वांटम कंप्यूटर का अर्थ है क्वांटम बायनरी लॉजिक पर कार्य करने वाला तथा बहुत तीव्र गति से काम करने वाला एक शक्तिशाली समानांतर कंप्यूटिंग निकाय। व्यवहारिक रूप में इसका निर्माण बड़ा ही कठिन कार्य तो प्रतीत होता है लेकिन सिद्धांत रूप में यह असंभव नहीं है। इसके लिए आवश्यक है बिना बाधा के माप सकने की क्षमता। चूंकि क्वांटम सिद्धांत बिना बाधित मापन की संभावना को नकारती नहीं है अतः आशा कर सकते हैं कि निकट भविष्य में यह वास्तविकता बन कर हमारे सामने आ सकेगा। भारत सहित विश्व के कई वैज्ञानिक इस हेतु अनुसंधानरत हैं।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2000) में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

एलीलोपैथी प्रक्रिया के कुछ नये आयाम

कु. इंदु बुघानी
द्वारा- डॉ. गोविंद सिंह रजवार,
रीडर, वनस्पति विज्ञान,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ऋषिकेश (उत्तरांचल) - 249 201

जब से संसार में सभ्यता का उदय हुआ तभी से मानव व पादपों के आपसी संबंधों का गहन अध्ययन किया जाता रहा है। किसी एक पौधे द्वारा अपने आसपास के वातावरण में उपस्थित अन्य पौधों की वृद्धि में बाधा उत्पन्न करना अथवा उसकी वृद्धि पर रोक लगाना काफी लंबे समय से जाना जाता रहा है। एलीलोपैथी पादप विज्ञान की एक ऐसी शाखा है जिसके अंतर्गत पौधों के बीच रासायनिक संबंधों व उनके प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। निस्संदेह पादपों के लाभकारी व हानिकारक गुणों का प्रभाव मानव के जीवन को भी प्रभावित करता है। प्रस्तुत लेख में एलीलोपैथी से संबंधित विभिन्न जानकारियों का समावेश है।

वस्तुतः एलीलोपैथी एवं एलोपैथी दोनों ही शब्द सुनने में एक से प्रतीत होते हैं। किंतु वास्तविक रूप में दोनों ही एक दूसरे से भिन्न हैं। एलीलोपैथी नामक शब्द का प्रयोग पौधों के रासायनिक संबंधों के संदर्भ में किया जाता है; जबकि एलोपैथी नामक शब्द का प्रयोग सामान्य रूप में मेडिकल भाषा में रोगियों के उपचार इत्यादि के लिए किया जाता है।

'एलीलोपैथी' नामक शब्द को स्पष्ट रूप में इस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है - "पौधों के मध्य ऐसे रासायनिक संबंध जो या तो पौधों की वृद्धि पर रोक लगाते हैं, अथवा उनकी वृद्धि में तीव्रता उत्पन्न करते हैं, इस प्रक्रिया को एलीलोपैथी के नाम से जाना जाता है।"

दूसरे शब्दों में "एलीलोपैथी रासायनिक अभिक्रियाओं या संबंधों अर्थात पादपों द्वारा वातावरण में मुक्त किये रासायनिक पदार्थों (एलीलोकेमिकल्स) की ऐसी जटिल प्रक्रिया है जिसमें एक पादप के लाभकारी व हानिकारक प्रभावों का दूसरे पादपों पर अध्ययन किया जाता है।" एलीलोपैथी की संपूर्ण प्रक्रिया में एलीलोकेमिकल्स एक अहम् भूमिका निभाते हैं। तथा ये लाभदायक व हानिकारक पदार्थ ही एलीलोपैथी के जन्मदाता हैं।

एलीलोकेमिकल्स ऐसे पौष्टिकता से रहित रासायनिक पदार्थ हैं जो किसी पादप द्वारा उत्पन्न किये जाने पर उसके आसपास के वातावरण में उपस्थित अन्य पौधों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं। इसके परिणामस्वरूप उस स्थान की वनस्पति की वृद्धि पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप प्रकृति में विद्यमान विभिन्न पेड़-पौधों का ह्रास होता जा रहा है।

एलोलीकेमिकल्स किसी भी पादप द्वारा विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा वातावरण में प्रवेश करते हैं। उदाहरणतया

1. पौधों की जड़ों के स्वेदस्राव द्वारा
2. वर्षा द्वारा मुक्त किये गये कई पदार्थों व उनका सड़ना व गलना
3. पादपों के अन्य सड़े व गले भागों द्वारा
4. पर्यावरण की विभिन्न परिस्थितियों द्वारा पादपों का अनेक पदार्थों का वातावरण में छोड़ना

इस देश की माटी ने, विदेशी वनस्पतियों को अपने सीने पर झेलकर उन्हें अपना भोजन देकर इतना लुभाया कि वे इस देश की होकर ही रह गयीं। उनके लाभकारी व हानिकारक गुणों द्वारा हमारे देश की वनस्पतियां इस कदर चपेट में आ गयीं कि इस भीषण चक्रव्यूह द्वारा

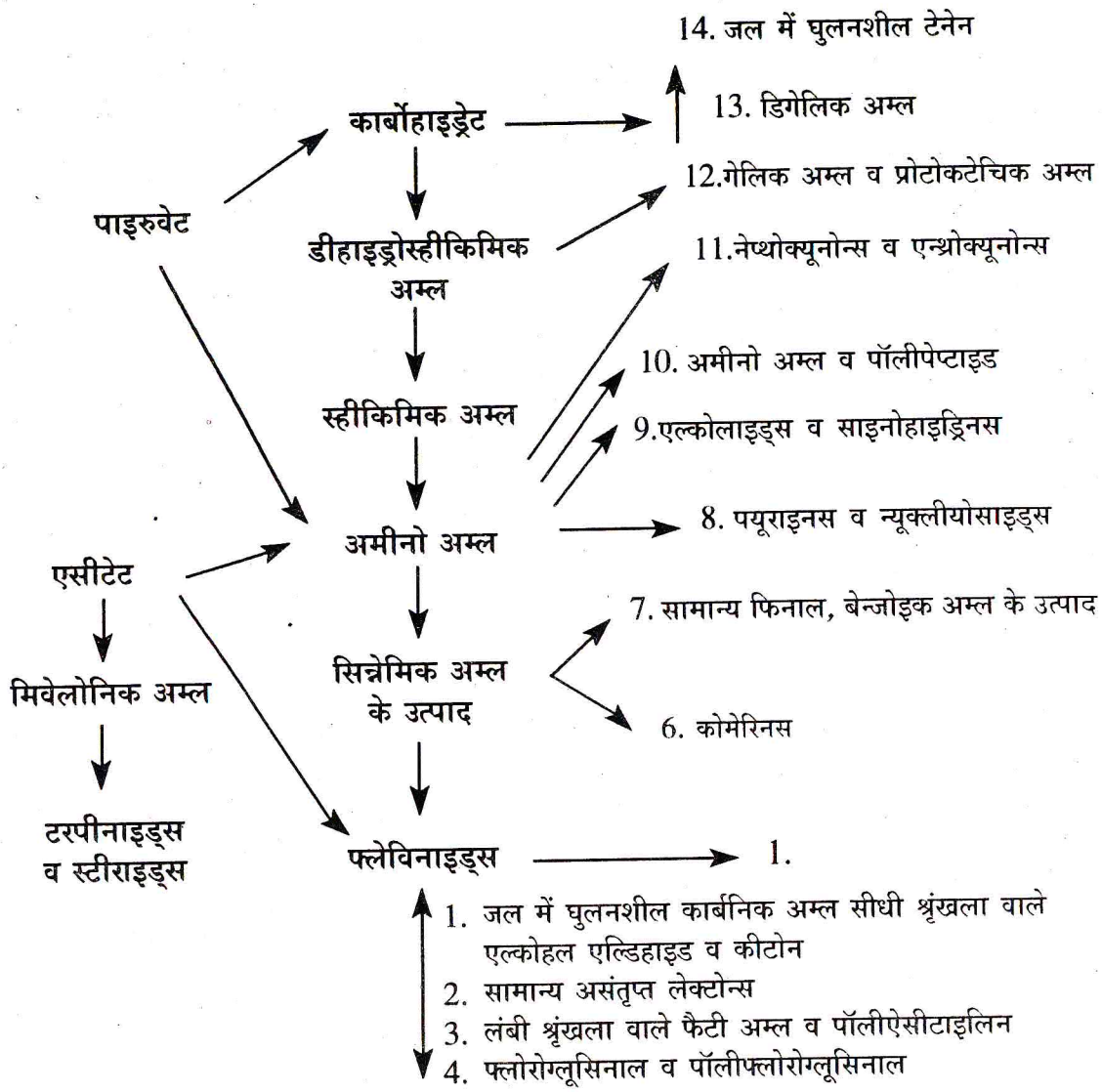

चित्र-1 : एलीलोकेमिकल्स का संश्लेषण

एलीलोपैथी जैसी जटिल प्रक्रियाओं का जन्म हुआ ।

वातावरण में एलीलोकेमिकल्स के मुक्त होने की प्रक्रिया तभी शुरु होती है, जब तक कोई पादप एक निश्चित वृद्धि अथवा विकास की अवस्था को न छू ले ।

एलीलोकेमिकल्स का वर्गीकरण :

एलीलोकेमिकल्स का रासायनिक वर्गीकरण एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण व जटिल प्रक्रिया है । बहुत से रासायनिक पदार्थों को द्वितीयक पदार्थों के नाम से जाना जाता है, क्योंकि ये पदार्थ किसी भी जीव या पादप की चयापचय क्रिया में कोई मूल व अहम् भूमिका नहीं निभाते हैं । इन द्वितीयक पदार्थों को मुख्यतः पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है; स्टीराइड्स, फिनाइलप्रोपन्स एक्टोजोनिनस, टरपीनाइड्स, एल्कोलॉइड्स ।

एलीलोकेमिकल्स का संश्लेषण :

इनके बनने की प्रक्रिया को चित्र-1 में स्पष्ट किया गया है । संबंधित विभिन्न घटकों/रसायनों के बारे में कुछ

जानकारियां इस प्रकार हैं :-

(क) जल में घुलनशील कार्बनिक अम्ल, सीधी श्रृंखला वाले एल्कोहल, एल्डिहाइड व कीटोन :

विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अम्ल, उदाहरणतया मेलिक अम्ल, सिटरिक, एसीटिक व टारटरिक अम्ल फलों में काफी मात्रा में पाया जाता है, जिसके फलस्वरूप ये अम्ल बीजों के अंकुरण में बाधा उत्पन्न करते हैं । एसीटलडिहाइड, प्रोपियोनिक एलडिहाइड, एसीटोन व एथेनॉल का टमाटर, शकरकंद, गाजर की पत्तियों व मूली की जड़ों द्वारा उद्‌गार व वाष्पित होकर निकलना पादपों की वृद्धि पर रोक लगाते हैं ।

(ख) सामान्य असंतृप्त लेक्टोन्स :

लेक्टोन्स का उद्‌गम सामान्यत: ऐसीटेट द्वारा हुआ है । उदाहरणतया पेरासोर बकिल अम्ल जो कि सोरबस एक्यूपेरिया नामक पादप के फलों में पाया जाता है, बीजों के अंकुरण तथा नवोद्‌भिद की वृद्धि में बाधा उत्पन्न करता है । एग्लाइकोन जो कि रेननक्यूलेसी नामक पादप कुल में पाया जाता है, बीजों के अंकुरण में तथा कई जीवाणुओं की वृद्धि में काफी अड़चनें पैदा करता है ।

(ग) लंबी श्रृंखला वाले फैटी अम्ल व पॉली ऐसीटाइलिन:

फैटीअम्ल व पॉलीऐसिटाइलिन एलीलोपैथी नामक प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण भुमिका अदा करते हैं । क्लेमाइडामोनास रीनहारडाई नामक शैवाल के विषैले गुण फैटी अम्लों के उत्पादन के फलस्वरूप ही सामने आये । लगभग 15 फैटी अम्ल जिनकी लंबाई चौदह से बीस कार्बन के बीच पायी गयी तथा इन्हीं अम्लों के कारण इस शैवाल द्वारा कई दूसरी उपयोगी शैवालों की वृद्धि में बाधा उत्पन्न की गयी । यह भी पाया गया कि जैसे-जैसे असंतृप्त पदार्थों में द्विबंधों की संख्या बढ़ती है वैसे ही विषैलेपन की विशेषताएँ भी बढ़ती जाती हैं । उच्चवर्गीय पादपों में लंबी श्रृंखलाओं के फैटी अम्लों द्वारा भी एलीलोपैथिक संबंध दर्शाये जाते हैं । उदाहरणतया पोलिगोनम एवीक्यूलेर पादप के द्वारा नौ फैटी अम्लों का पता लगाया गया (पालमीटिक, ओलिक, स्ट्रीरिइक अम्ल इत्यादि) । इनकी केवल 5 पी.पी.एम. की सांद्रता पर इन अम्लों के सोडियम अम्लों द्वारा बरमूडा घास के नवोद्‌भिदों की वृद्धि में बाधा उत्पन्न की गयी । एगरोपाइरीन नाम्क पॉलीऐसीटाइलिन जो कि एगरोपाइरोन रीपेन्स नामक पौधे द्वारा उत्पन्न किया जाता है, सूक्ष्म जीवियों को पूर्णतया नष्ट कर देता है ।

(घ) सामान्य फिनोल, बेन्जोइक अम्ल व उसके उत्पाद :

ये रासायनिक पदार्थ कुछ मिश्रित अवस्था में पाये जाते हैं । वेनीलिन, वेनीलिक व हाइड्रोक्यूनोन ऐसे फिनॉलिक पदार्थ हैं जो सामान्यत: पादपों द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं तथा पादपों के नवोद्‌भिद की वृद्धि में बाधा उत्पन्न करते हैं ।

(ड) कोमेरिन्स :

कोमेरिन्स ओ-हाइड्रॉक्सीसिनमिक के लेक्टोन्स होते हैं । ये लगभग पादपों के सभी भागों में पाये जाते हैं । एस्क्यूलिन एक विषैला रासायनिक पदार्थ है जो कि एस्क्यूलस हिप्पोकेस्टेनम तथा कोमेरिन मेलियोटस अल्बा द्वारा उत्पादित किया जाता है । एस्क्यूलिटिन का ग्लूकोसाइड एस्क्यूलिन गेहूँ के नवोद्‌भिद् की वृद्धि को रोकता है । स्कोपोलिन जिसका उत्पादन किया गया, इस अम्ल द्वारा नाइट्रीकरण करने वाले जीवाणुओं द्वारा तथा आवृत्तबीजियों में बाधक के रूप में कार्य करता है; नाइट्रीकरण को प्रभावित करने के साथ-साथ यह मृदा-पोषण अथवा मृदा की वृद्धि में भी हस्तक्षेप करता है ।

(च) फ्लेविनाइड्स :

फ्लेविनाइड्स एक बहुत बड़े समूह के रूप में पाये जाते हैं । विशेषकर बीज उत्पन्न करने वाले पादपों के बीच, संख्या में अधिक होने के बावजूद कुछ फ्लेविनाइड्स द्वारा ही एलीलोपैथी में भूमिका पायी गयी है, जिसका विशेष कारण इनकी पहचान करने में उत्पन्न समस्याएं हैं । नवीनतम जानकारी के अनुसार फ्लोरीजिन नामक फ्लेविनाइड सेब की जड़ों में उपस्थित पाया गया, तथा फ्लेविनाइड सेब के नवोद्‌भिदों की वृद्धि में बाधा उत्पन्न करता है । एक अन्य जानकारी के अनुसार क्वरसिटिन, केमीफिरोल, एपीकेटेचिन और कटेचिन के ग्लाइकोसाइड्स सेब के सड़े-गले भागों में पाये गये संभवत: इन पदार्थों द्वारा सेब के पादपों के पुन:रोपण से संबंधित परेशानी को दूर करने में अहम् भूमिका निभायी गयी ।

(छ) टेनिन्स :

गैलिक अम्ल व हैक्साऑक्जीडाईफीनिक सामान्यतः एलीलोपैथी में टेनिन के रूप में उपयोगी हैं। कुछ टेनिन्स विभिन्न फिनॉलिक अम्लों के जटिल मिश्रण हैं, जो जल में घुलनशील रूप में द्विबीजीय पादपों में पाये जाते हैं। बीज व अंकुरण में बाधा, नाइट्रीकरण करने वाले जीवाणु में वृद्धि पर रोक लगाकर, रस कोपेलाइना (Rhus Copallina) के राइजोबियम की वृद्धि में बाधा उत्पन्न करते हैं।

(ज) टरपीनाइड्स व स्टीरॉइड्स :

आवृत्तबीजियों द्वारा विभिन्न प्रकार के टरपीनाइड्स उत्पादित किये जाते हैं। परंतु कुछ ही टरपीनाइड्स द्वारा एलीलोपैथी में भूमिका प्रदर्शित की गयी है। सूक्ष्म जीवों द्वारा सामान्यतः टरपीनाइड्स का उत्पादन नहीं किया जाता है, परंतु कुछ कवकों द्वारा टरपीनाइड्स तथा मिश्रित टरपीनाइड्स अर्थात मेरासमिन्स का उत्पादन किया जाता है। तेलीय वाष्पित पदार्थों के महत्त्वपूर्ण घटक मोनो टरपीनाइड्स जिनको आवृत बीजियों में उपस्थित पाया गया ये पदार्थ बीज अंकुरण व कुछ जीवाणुओं के लिए विषैले पाये गये। कपूर व साइनीओल दोनों ही टरपीनाइड्स अति विषैले रूप में वृद्धि पर अंकुश लगाते पाये गये हैं। सालविया में व स्ट्रोफेनथिडीन दोनों ही महत्त्वपूर्ण स्टीरॉइड सूक्ष्म जीवियों को नष्ट करने में सहायक होते हैं। नवीनतम जानकारी के अनुसार साइनिओल, एल्फा फिलेनड्रिन, एल्फा पाइनिन व बीटा पाइनिन शीघ्र ही वाष्पित होने वाले पदार्थ एलीलोपैथी नामक प्रक्रिया में बाधक के रूप में जाने जाते हैं।

एलीलोपैथिक पदार्थों को प्रभावित करने वाले कारक :

विभिन्न कारक जो एलीलोपैथिक पदार्थों को प्रभावित करते हैं, उनमें प्रकाश, समय, पोषक तत्त्व, जल दबाव, तापक्रम इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं।

1. प्रकाश :

आयनिक विकिरण :

आयनिक विकिरण निकोसियाना तबेकम् अर्थात तंबाकू के पौधों में विभिन्न फिनॉलिक अवरोधकों की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि करती है। सूरजमुखी के पौधों को हम 2000 आंग्स्ट्रॉम वाली विकिरण की आयनिक किरणें प्रदान करें तो निस्संदेह ही कैफइक अम्ल व क्वरसिटिन की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

पराबैंगनी विकिरण :

हरित गृहों में अध्ययन के दौरान उगाये गये तंबाकू के पौधों पर पराबैंगनी विकिरण के प्रभाव से रूटिन नामक अम्ल सामान्य रूप में पाया गया। यदि तंबाकू के पौधों को प्राकृतिक तथा पराबैंगनी विकिरणों का प्रकाश एक साथ दिया जाये तो इन पादपों में क्लोरोजनिक अम्ल की 79% वृद्धि होती है।

लाल व अवरक्त किरणें :

आलू के कंद में लाल किरणों के कारण फिनॉलिक अम्ल की सांद्रता में वृद्धि पायी गयी, परंतु अवरक्त किरणें प्रदान करने पर ऐसा कोई परिणाम नहीं पाया गया।

दृश्य विकिरण की तीव्रता :

यदि आलू के कंद को जल में रख कर दृश्य विकिरण दिया जाये तब इसमें क्लोरोजनिक अम्ल की सांद्रता बढ़ जाती है।

2. दिन की लंबाई :

प्रायः लंबे दिन पादपों में फिनॉलिक अम्ल की सांद्रता व टरपीन्स की मात्रा को बढ़ा देते हैं। यह पाया गया कि पुदीने के पादप की वृद्धि लंबे दिन में होती है, जिसके फलस्वरूप वह अधिक सांद्रता वाले मोनोटरपीन्स का उत्पादन करता है। एलीलोपैथी में एर्लालोकेमिकल्स की शुद्धता की परख अथवा जाँच एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

3. पोषक तत्त्वों की कमी :

इसके अंतर्गत बोरोन, कैल्सियम, मैग्नेशियम,नाईट्रोजन, सल्फर इत्यादि की कमी का अलग-अलग प्रभाव पाया गया जैसे तंबाकू के पौधे में बोरोन की कमी से पत्तियों में स्कोपोलिन की 20 गुना वृद्धि, मैग्नेशियम की कमी से क्लोरोजनिक अम्ल की सांद्रता में कमी, इत्यादि।

4. जल का दबाव :

इससे मृदा की जनन शक्ति प्रभावित होती है जिससे एलीलोपैथिक पदार्थों पर प्रभाव पड़ता है।

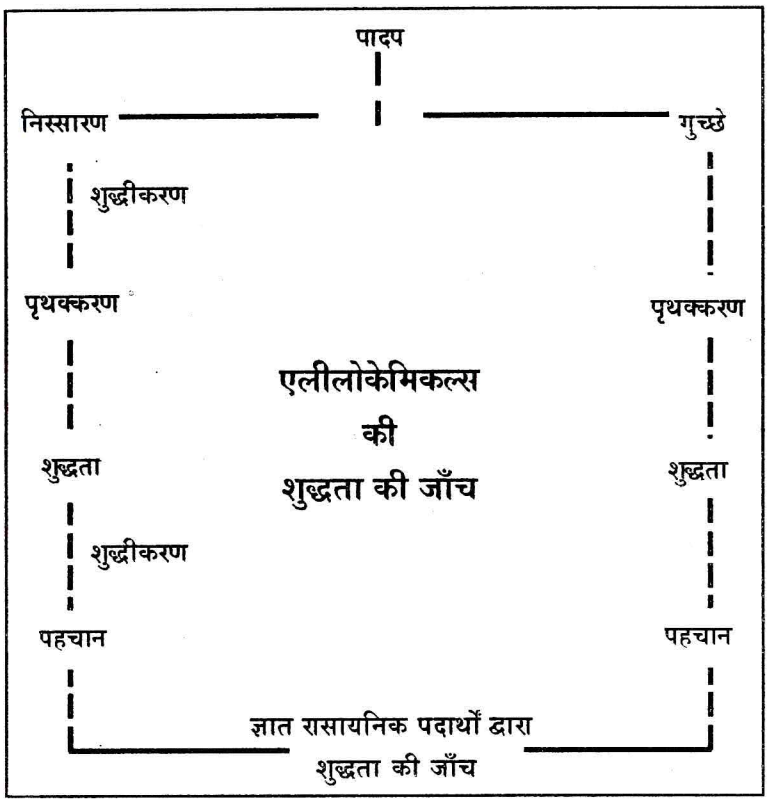

चित्र - 2 : एलीलोकेमिकल्स का पृथकरण, शुद्धता व पहचान

5. तापक्रम का प्रभाव :

यह पाया गया कि तंबाकू के पौधों में 32^0 सें. पर स्कोपोलिन की कमी होती है ।

एलीलोकेमिकल्स की शुद्धता :

एलीलोपैथी में एलीलोकेमिकल्स की शुद्धता की परख और जांच का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । इनके पृथ्यकरण, शुद्धता एवं पहचान की पद्धति को चित्र-2 में दिखाया गया है ।

बायो ऐसे (Bio assay) :

किसी भी रासायनिक पदार्थ की एलीलोपैथिक क्षमता मापने का सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि या तो मृदा परीक्षण में सही मात्रा में शुद्ध व सही रासायनिक पदार्थ का समावेश हो अथवा पादप से संलग्न का ही प्रयोग हो । सामान्य रूप से बीजों के अंकुरण के लिए गोलाकार पेटरीप्लेटस को ही प्रयोग में लाया जाता है । इन पेटरीप्लेटस में कुछ चयनित पादपों के बीजों को एक परीक्षण घोल में भिगा दिया जाता है । इसके उपरांत इस परीक्षण घोल को इनक्यूबेटर में प्रकाश व अंधेरे के बीच एक ऐसे तापक्रम पर रखा जाता है जो कि बीजों के अंकुरण के लिए उपयुक्त हो । पाँच दिन अंकुरण प्रक्रिया को नोट किया जाता है, तथा अंकुरण के समय में हुई देरी को मापा जाता है ।

एलीलोकेमिकल्स की शुद्धता को तापक्रम, प्रकाश, अंधकार, ऑक्सीजन की उपस्थिति, परासरणी विभव इत्यादि भी प्रभावित करते हैं । उदाहरणतया बहुत से जंगली पादपों में अधिक व कम तापक्रम के बढ़ते चक्र के प्रभाव से अंकुरण की तीव्रता बढ़ जाती है । एलीलोपैथिक विज्ञान में प्रयोगशालाएं जैव वैज्ञानिक जाँच में एक अहम् भूमिका निभाती हैं । विभिन्न तरीकों द्वारा हम प्रयोगशाला द्वारा जैव वैज्ञानिक जाँच व प्राकृतिक प्रक्रियाओं की खाई को

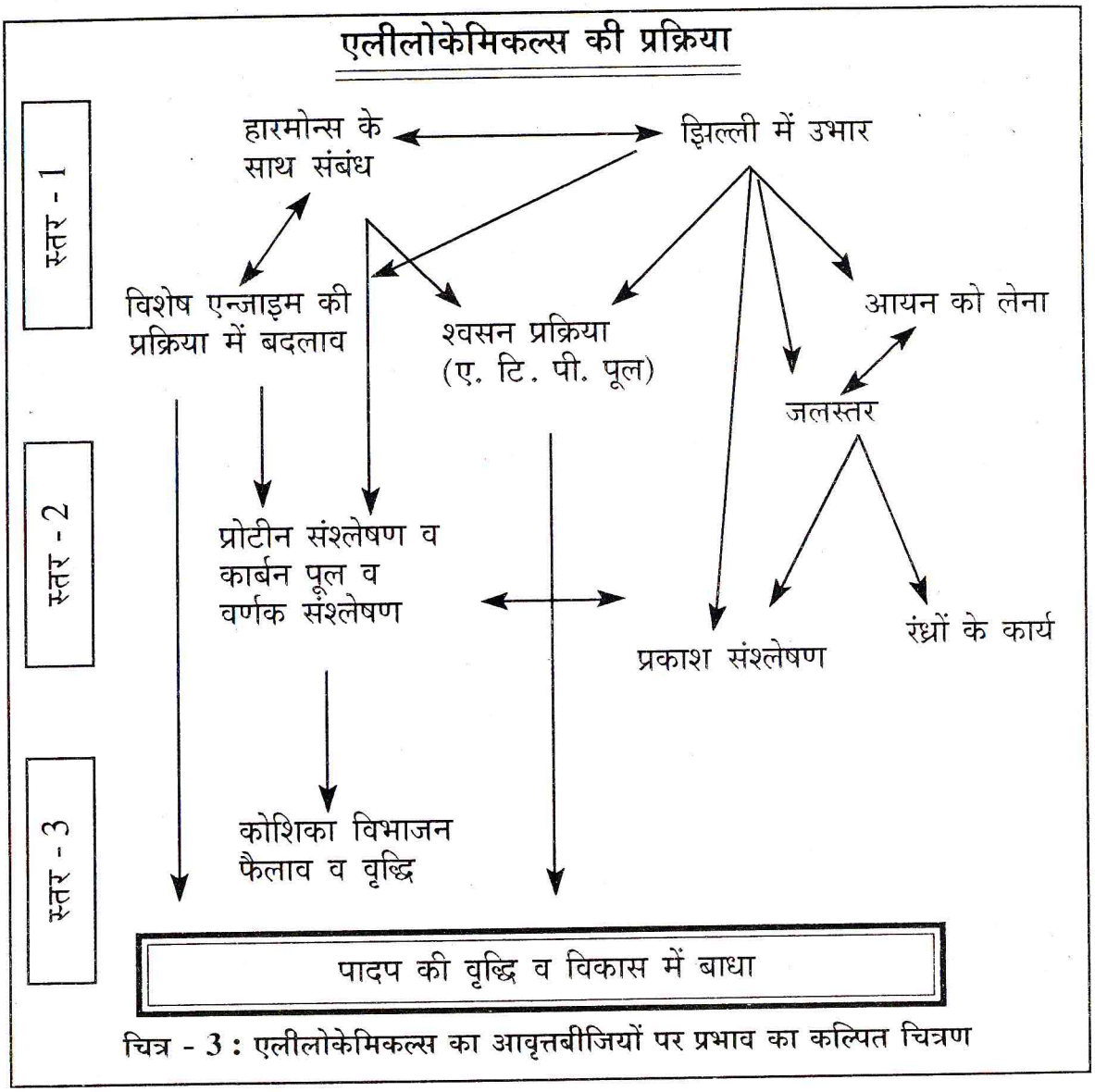

चित्र - 3 : एलीलोकेमिकल्स का आवृत्तबीजियों पर प्रभाव का कल्पित चित्रण

कम कर सकते हैं।

1. मृदा का चुनाव इस तरह का हो जैसे कि एलीलोपैथिक पादप की मृदा है।
2. एलीलोपैथिक पादपों के प्रकार प्राकृतिक वास तथा जीवन चक्र पर सावधानी बरतनी होगी, मुख्यतया अवांछित पादपों पर।
3. पादपों द्वारा वातावरण में छोड़े गये रासायनिक पदार्थों का आसपास में उपस्थित अन्य पादपों पर प्रभाव व पहचान।
4. ऐसे रासायनिक पदार्थों की जाँच व शुद्धता की परख की जाय जो पहले भी ऐसे पदार्थों द्वारा प्रभावित हो चुकी हो।
5. रासायनिक पदार्थों के विषैलेपन की सही पहचान।

एलीलोकेमिकल्स की प्रक्रिया :

इससे पादप की वृद्धि एवं विकास में होने वाले प्रभाव का कल्पित चित्रण चित्र-3 में किया गया है।

एलीलोपैथी की उपयोगिता :

किसी भी वैज्ञानिक विषय पर उसकी उपयोगिता उस विषय को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है। एलीलोपैथी विज्ञान में सामान्यतः इसके हानिकारक गुणों को ही उजागर किया गया है; परंतु नवीनतम् जानकारी के अनुसार एलीलोपैथी की कुछ लाभकारी विशेषताएँ ऐसी भी हैं, जिनके द्वारा वनस्पति विज्ञान में अहम् भूमिका निभाई जा सकती है।

पारिस्थितिक तंत्र प्रबंधन :

नवीनतम अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि एलीलोपैथी द्वारा विभिन्न प्रकार के अवांछित पादपों को पूर्णतया नष्ट करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई जा सकती है।

कीट प्रबंधन :

एलोलीकेमिकल्स द्वारा पादपों के कीड़ों, नीमेटोड्स, बीमारियों तथा अवांछित पादपों द्वारा बचाव भी होता है। परंतु इस विषय पर आगे अभी बहुत किया जाना बाकी है। अन्य आधुनिक जानकारी के अनुसार जिस हाल में ही कार्य शुरु किया गया है कि एलीलोपैथी विशेषता वाली फसलों को चक्रीय विधि द्वारा उगाना; उदाहरणतया राई तथा उसके सड़े गले भागों द्वारा कुछ अवांछित पादपों की रोकथाम में अहम् भूमिका निभाई गयी, ठीक उसी प्रकार गेहूँ, ज्वार, बाजरा द्वारा भी यही भूमिका निभाई गयी।

विशिष्ट रासायनिक पदार्थों का उत्पादन :

एलीलोपैथी के अध्ययन द्वारा स्पष्ट होता है कि इसके अंतर्गत आने वाले रासायनिक पदार्थों में बदलाव लाकर ये प्राकृतिक व कृषि तंत्र में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। एलीलोकेमिल्स को भविष्य में "अवाँछित पादपों को नष्ट" करने वाले पादपों के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। भविष्य में एलीलोकेमिकल्स द्वारा विभिन्न प्रकार के नये एवं विलक्षण रासायनिक पदार्थों का संश्लेषण भी किया जा सकता है।

एलीलोपैथी की अवांछित पादपों की रोकथाम में संभावित उपयोगिता :

नवीनतम अध्ययन के बाद यह पाया गया कि यदि कृषि फसलों में हम एलीलोपैथिक गुणों का समावेश करायें तो कृषि फसलों द्वारा अवांछित पादपों की वृद्धि पर रोक लगायी जा सकती है। विभिन्न प्रकार की विधियां द्वारा इस प्रक्रिया को लागू किया जा सकता है। उदाहरणतया: कई नयी विधियों को अपनाकर जैसे कि कृषि फसलों में प्रोटोप्लास्ट संगलन (Protoplast Fusion) द्वारा एलीलोपैथीक का प्रवेश कराना जिसके फलस्वरूप अवांछित पादपों की रोकथाम पर काबू पाया जा सकता है। जैविक नाइट्रीकरण में विभिन्न प्रकार की लेग्यूम्स अर्थात दालें, फली इत्यादि का प्रयोग। क्योंकि बहुत सी दलहनी फसलें सामान्य फसलों के प्रति ऐलीलोपैथिक गुण प्रदर्शित करती हैं।

एक महत्त्वपूर्ण विधि के द्वारा विभिन्न स्रोतों द्वारा एलीलोपैथिक कारकों को अवांछित पादप के नाशक के रूप में प्रयोग। उदाहरणतया राइजोबीटोक्सीन जो कि एलीलोपैथिक कारक के रूप में सोयाबीन के नोड्यूल्स में राइजोबियम जेपोनिकम् द्वारा उत्पादित किया जाता है। यह एक अवांछित प्रभावशाली अवांछित पादपों के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके फलस्वरूप नीमेटोड्स व कीटों को भी नष्ट किया जा सकता है।

पादपों द्वारा बाधक के रूप में जलीय अवाँछित पादपों की रोकथाम :

अवांछित पादप अक्सर नहरों, तालाबों आदि में जल के प्रवाह में बाधा उत्पन्न करने के साथ-साथ जल के लाभकारी गुणों को भी नष्ट कर देते हैं। नवीनतम अध्ययन तथा रोचक जानकारी के अनुसार अति सूक्ष्म स्पाइकरस द्वारा इलोडिया केनेडेसिस तथा पोटेमोजीटोन क्रिसपस को नष्ट किया गया। इस अध्ययन द्वारा यह पता लगाया गया कि क्या इस संपूर्ण प्रक्रिया में एलीलोपैथी द्वारा भी कोई भूमिका निभाई जाती है ? वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न प्रयोगों द्वारा यह पता लगाया गया कि इलियोकेरिस कोलोरेडोनेसिस की लीचड् स द्वारा निस्संदेह ही अमरीका व सागो के तालाब में पाये जाने वाले अवांछित पादपों की संख्या में कमी पायी गयी। अतिरिक्त प्रयोगों द्वारा

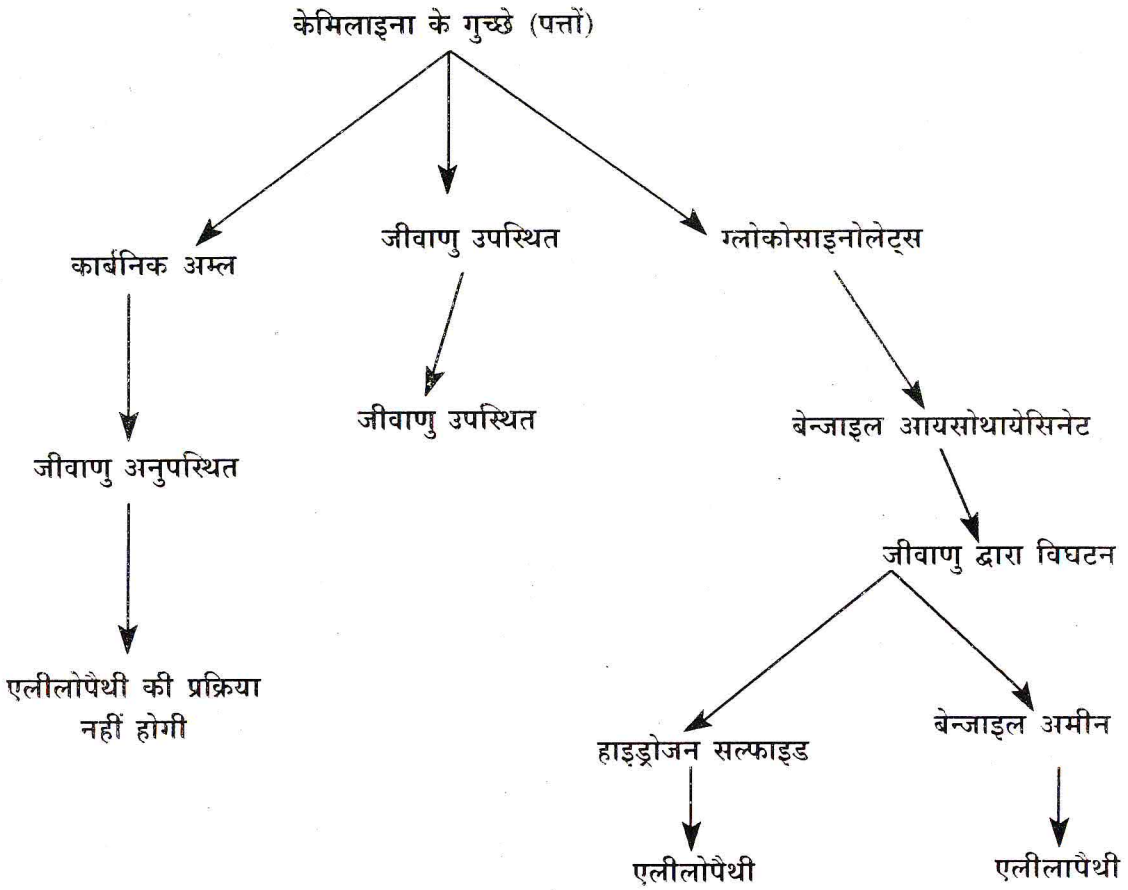

चित्र-4 : केमिलाइना सटाइवा एवं एलीलोपैथी

यह भी पाया गया की इलियोकेरिस कोलोरेडोनेसिस के लीचेड्स द्वारा इन पादपों का भार भी घटा दिया गया, इसलिए यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि एलीलोपैथी द्वारा अवांछित पादपों को नष्ट करने अथवा ह्रास करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई जाती है ।

वस्तुत: इस विषय को पूर्णत: फलित करने हेतु बहुत कुछ किया जाना शेष है, परंतु एलीलोपैथी द्वारा अवांछित पादपों की रोकथाम के कुछ नवीनतम उदाहरणों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि एलीलोपैथी विज्ञान वनस्पति जगत व कृषि जगत में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है ।

निस्संदेह एलीलोपैथी एक जटिल व रोचकपूर्ण विषय है । मानव जीवन में इसकी रोचकता बढ़ाने हेतु एलीलोपैथी नामक वैज्ञानिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है, जिसमें देश-विदेश में एलीलोपैथी से संबंधित विभिन्न कार्यों का समावेश होता है । यदि हम एलोलीपैथी के हानिकारक गुणों को न देखते हुए इसके लाभकारी गुणों की ओर ही ध्यान दें तो हम पायेंगे कि मानव जीवन में एलीलोपैथी द्वारा अहम् भूमिका निभाही जाती है, क्योंकि मानव जीवन पूर्ण रूप से पादपों पर ही आश्रित है । उपर्युक्त विषय पर कई शोधकार्य चल रहे हैं, जो अपने चरमोत्कर्ष पर भी हैं । भविष्य में इससे संबंधित परिणाम हमारे सामने परिलक्षित होंगे, तथा ये परिणाम एलीलोपैथी के नवीनतम आयामों को प्रदर्शित करेंगे जो कि कृषि से संबंधित क्षेत्रों में भी लाभकारी सिद्ध होंगे ।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2000) में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

जापानी मस्तिष्क शोथ - एक असाध्य प्राणघाती व्याधि

उर्मिला तिवारी
टाइप IV-1, अधिकारी आवास,
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान,
नामकुम, रांची (झारखंड) - 834 010

जापानी मस्तिष्कशोथ एक घातक महामारी के रूप में हमारे देश के कई भागों में वर्षों से जनसाधारण को काल कवलित करता चला आ रहा है । अद्यतन इसके सुरक्षात्मक प्रतिरक्षण का कोई सफल मार्ग नहीं खोजा जा सका है । इस व्याधि की सफल चिकित्सा पद्धति भी अभी तक अविकसित ही है । इस रोग के उत्तरदायी विषाणु का प्रधानपोषी सामान्य रूप से मच्छर होता है और द्वितीयकपोषी के रूप में मनुष्य है । व्याधि के प्रमुख लक्षणों के रूप में शारीरिक आलस्य, ज्वरातिरेक और दृष्टि व्यतिक्रम होते हैं । विगत 25 वर्षों में इस व्याधि के विषाणु के विषय में विस्तृत जानकारी के अतिरिक्त इसके पृथक्करण तथा निदान के क्षेत्र में सराहनीय प्रगति हुई है । प्रस्तुत लेख में विषाणु और व्याधि के बारे में विस्तृत जानकारी, तथा नियंत्रण उपायों का विवरण दिया गया है ।

जापानी मस्तिष्कशोथ मच्छरों के द्वारा फैलने वाला प्राणघातक कीटाधारी विषाणु (Arbovirus) संक्रमण है। 1967 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस विषाणु को कीटाधारित-विषाणु का एक सदस्य घोषित किया । साधारणतया कीटाधारी विषाणु प्रकृति में जैविक प्रसारण के द्वारा अनुरक्षित होते रहते हैं । यह प्रसारण मुख्यत: संक्रमण योग्य सुग्राही मेरुदंडधारी पोषी प्राणियों में रक्ताहारी संधिपादियों (Haematophagus arthropods) के माध्यम से हुआ करता है । ये विषाणु पोषी में विखंडन द्वारा प्रजनन करते हैं और अत्यधिक संख्या होने पर विषाणुता (Viraemia) उत्पन्न करते हैं। संधिपादों के शरीर में भी इनका प्रजनन चक्र चलता रहता है और बाह्यऊष्मायन (Extrinsic incubation) के उपरांत उनके काटने से दूसरे मेरुदंडधारियों में भी पहुंच जाते हैं ।

वर्गीकरण :

संधिपादीय विषाणु शब्द केवल पर्यावरणीय संदर्भ में ही प्रयुक्त होता है । वर्गीकरण के मापदंडों में मुख्यत: विषाणु की बाह्य आकृति, संक्रमण शैली और आंतरिक संरचना को आधार माना जाता है । प्रतिजनीय प्रकृति से भिन्न 250 से अधिक विषाणुओं, विशेषत: संधिपादीय विषाणु को 6 कुलों में रखा गया है (तालिका - 1) ।

1. रियोवाइरिडी -

(i) रियोवाइरस प्रजाति
(ii) ओर्बीवाइरस प्रजाति
(iii) रोटावाइरस प्रजाति

2. रैब्डोवाइरिडी -

(i) बेसीकुलोवाइरस प्रजाति
(ii) लाइसावाइरस प्रजाति
(iii) एफेमेरल ज्वर वाइरस
(iv) ट्राउट वाइरस प्रजाति
(v) सिग्मा वाइरस प्रजाति
(vi) पादप वाइरस प्रजाति

तालिका - 1 :

JE विषाणु की वर्गात्मक स्थिति तथा अन्य विवरण

विषाणु कुल	प्रजाति	प्रतिनिधि उपप्रजातियां	आमाप (nm)	न्यूक्लीय अम्ल	आवरण*
टोगावाइरिडी परिवार	अल्फावायरस	आरबोवायरस ग्रेड - A (पूर्वी, पश्चिमी एवं वेनेज़ुयेला इक्वाइनएनसिफैलोमायलिटिस)	50-70	RNA	+
	फ्लेवीवाइरस	आरबोवायरस ग्रेड - B (जापानी मस्तिष्कशोथ JE, डैन्यू, मरे घाटी, पीत ज्वर)	40-60	RNA	+
	पेस्टीवाइरस	हॉग-विषूचिका (Hogcholera) और संबंधित वाइरस वर्ग के सदस्य (HV)	30-40	RNA	+
	रुबीवायरस	रुबेला विषाणु (RV)	40-60	RNA	+

(* + उपस्थित)

3. टोगावाइरिडी -

(i) अल्फा वाइरस प्रजाति

(ii) फ्लेवीवाइरस प्रजाति

(iii) पेस्टीवाइरस प्रजाति

(iv) रुबी वाइरस प्रजाति

4. एरेनावाइरिडी - एरीनावाइरस समूह

5. ब्यून्यावाइरिडी - ब्यून्यावाइरस समूह

6. फाइलोवाइरिडी - पादपरोगकारी विषाणु वर्ग के सदस्य, यथा ब्रोमो, कार्ला, कौलीमो, क्यूक्यूमो, नेपो, पोटेक्सो, पोटी, टोब्रा, टाइमोवाइरस आदि ।

उपर्युक्त सभी विषाणु कुलों में 'टोगावाइरिडी' परिवार के सभी सदस्य विषाणु मुख्यरूप से संक्रामक होते हैं । फ्लेवीवाइरस प्रजातियों के विषाणु 40-60 नैनोमीटर लंबे, एकलपट्टिकाधारी RNA प्रकृति के होते हैं । ये लाइपिड आवरणयुक्त, विंशफलकीय आकृतिधारी होते हैं। जापानी मस्तिष्कशोथ-विषाणु (JE Virus) इसी प्रजाति का एक सदस्य है । फ्लेवींवाइरस प्रजाति के सदस्यों के द्वारा उत्पन्न संक्रमणों की सूची निम्न है (चित्र 1 देखें) :-

1. मस्तिष्क शोथकारी व्याधियां -

(क) जापानी मस्तिष्क शोथ (एशिया के देशों में) ।

(ख) सेन्टलुई मस्तिष्क शोथ (St. Louis Encephalitis) (अमरीकी देशों में) ।

2. क्षरणोत्पादक व्याधियां -

(क) डेन्यू ज्वर

(ख) पश्चिमी नील ज्वर (West Nile Fever)

3. रक्तस्रावी ज्वर व्याधियां -

(क) पीतज्वर

(ख) कैसानूर वन व्याधि (KFD) (Kysanmur Forest Disease)

(ग) तीव्र डेन्यू ज्वर (Acute Dengue Fever)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

जापानी मस्तिष्क ज्वर का नामकरण वर्ष 1924 में हुआ था जो उस समय प्रचलित "सुस्त मस्तिष्क शोथ" (Encephalitis lethargica) या "वॉन इकोनोमो

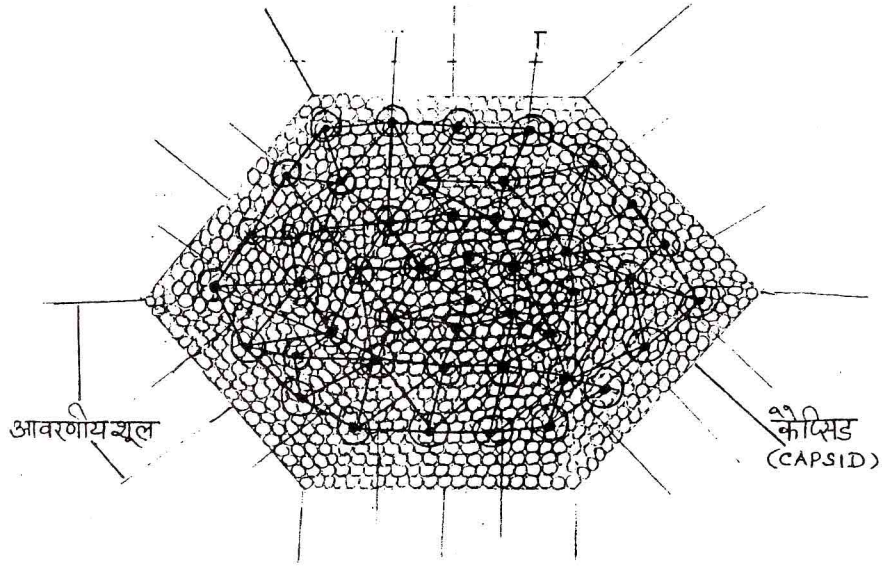

JE विषाणु का व्यवस्थात्मक रेखा-चित्र (आवर्धित प्रारूप)

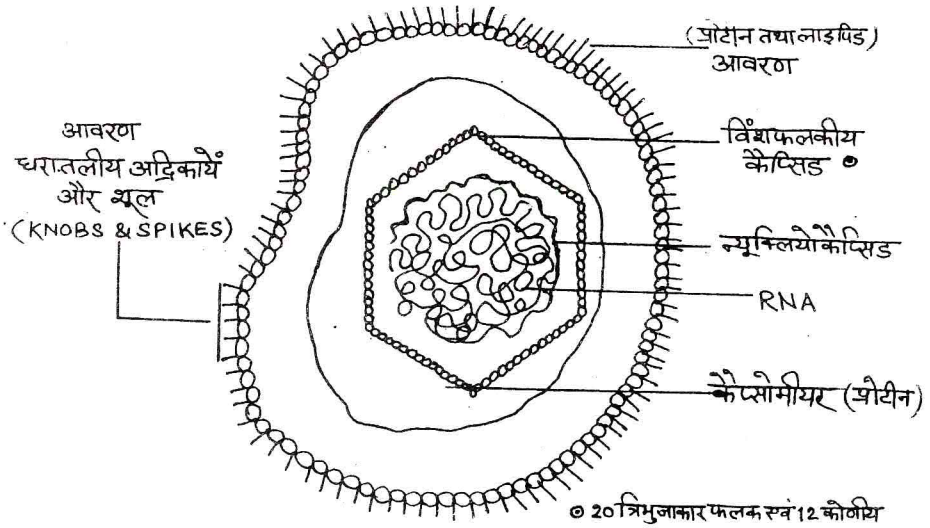

JE विषाणु कण (VIRION) का व्यवस्थात्मक चित्र

चित्र-1

व्याधि" से कई रूपों से भिन्न व्याधि थी। वॉन इकोनोमो व्याधि को उस समय "टाइप A मस्तिष्क शोथ" के नाम से भी जाना जाता था इसीलिए इस नवीन व्याधि (JE)" को "जापानी B- मस्तिष्कशोथ" के नाम से पुकारा गया, जो वर्तमान में "जापानी मस्तिष्कशोथ (JE)" के नाम से जाना जाता है। टोकियो में वर्ष 1871 में इस प्रकार के मस्तिष्कशोथ व्याधि की पहचान की गयी थी तथा मानव मस्तिष्क से टोकियो में ही इस व्याधि के रोगाणु

(Pathogen) की प्राप्ति संभव हुई थी। इसे "नाकायामा वर्ग के विषाणु का आद्यप्रारूप"(Prototype) नाम से वर्ष 1935 में वैज्ञानिक वर्ग ने मान्यता प्रदान की। सर्वप्रथम जापान में पाये जाने के कारण इस व्याधि को "जापानी मस्तिष्क शोथ" के नाम से पुकारा जाने लगा।

संक्रमण व्यापकता :

JE पूर्व, दक्षिण एवं समस्त एशिया महाद्वीप में प्रमुख रूप से होने वाली भयंकर महामारी है। जापान में वर्ष 1871 से 1919 के मध्य इस संक्रामक व्याधि का आठ बार प्रकोप हुआ था। 1960 के उपरांत चीन, जापान में इसके प्रकोप में कुछ कमी आयी। भारत में भी यह एक पूर्व प्रचलित संक्रामक व्याधि के रूप में ज्ञात है। इसका प्रकोप लगभग 4 दशकों से हमारे देश में होता रहा है। इसके प्रमाण सर्वप्रथम 1952 में किये गये एक सर्वेक्षण के दौरान मिले थे। इस सर्वेक्षण के अंतर्गत दक्षिण भारत के उत्तरी आर्काट और इसके निकटवर्ती जनपदों में, आंध्रप्रदेश के कुछ भागों में इस रोग से ग्रस्त लोगों का सीरम परीक्षण किया गया था। इसके साथ-साथ मच्छरों के शरीर में भी इस व्याधि का उत्तरदायी विषाणु भी पाया गया। वर्ष 1958 में क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज के चिकित्सालय में JE व्याधिग्रस्त रोगियों में से तीन के मस्तिष्क ऊतकों में इस व्याधि के विषाणु को सर्वप्रथम देखा गया था। 1970 के पूर्व JE व्याधिग्रस्त रोगी केवल दक्षिण भारत तक ही सीमित थे। तत्पश्चात लगभग 4-5 वर्षों के अंतराल पर देश के अन्य भागों में भी इस व्याधि के होने के प्रमाण प्राप्त हो चुके हैं। हमारे देश में JE व्याधि की संक्रमण दर वर्ष 1979, 1981 और 1986 में आंध्रप्रदेश में सर्वाधिक थी।

जापानी मस्तिष्कशोथ के विकीर्ण (Sporadic) और महामारी के रूप में आक्रमण के समाचार आज भी विश्व के विभिन्न भागों से प्राप्त हो रहे हैं। इस न्यूनाधिक आवृति के कारण अज्ञात हैं। आंध्रप्रदेश के चित्तूर, नेल्लौर, अनंतपुर, कुडप्पा, कुरनूल, गुंटूर और प्रकाशम जिलों तथा तमिलनाडु, कर्नाटक, गोवा, पांडिचेरी, पश्चिम बंगाल, असम और पूर्वी उ. प्र. में भी यह व्याधि भयंकर रूप से व्याप्त होने के समाचार प्रायः मिलते हैं।

व्याधि का वितरण :

JE मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाली व्याधि है। यह निम्न आय वर्गीय और निम्न सामाजिक स्तरीय परिवारों में अधिकांशतः पायी जाती है। इसका प्रकोप प्रायः विकीर्ण समूहों में ही होता है। हमारे देश में इस व्याधि का अनुवर्ती - अनानुवर्ती अनुपात 1 : 20 से 1 : 30 के मध्य है। पश्चिमी देशों में यह अनुपात 1 : 500 के लगभग है। दक्षिण भारत में इस व्याधि से 15 वर्ष तक की आयु के लोग मुख्य रूप से आक्रांत हो जाते हैं। महामारी के रूप में संक्रमण के परिणामस्वरूप यह वयस्कों को भी आक्रांत करता है। प. बंगाल, बिहार, असम, उ. प्र. के पूर्वी भागों तथा गोवा में इस व्याधि से सभी आयुवर्ग के लोग प्रभावित होते हैं।

अन्य सभी महामारी व्याधियों की तरह JE व्याधि का संक्रमण और प्रभाव पुरुषों में अधिक होता है। महामारी एवं सीमित क्षेत्रीय (Endemic) प्रकृति के अनुसार इस व्याधि का संक्रमण भिन्न भिन्न होता है। महामारी के रूप में व्याधि का वितरण गैर सीमित क्षेत्रों (Non - endemic) में भी हो सकता है। सीमित संक्रमण क्षेत्रों में इंडोनेशिया, फिलिपाइंस, सिंगापुर, ताइवान, भारत, श्रीलंका तथा मलेशिया प्रमुख हैं। भारत के तथाकथित राज्यों में यह व्याधि उत्कीर्ण रूप से वर्ष भर होती रहती है। वर्षा ऋतु में तथा आरंभिक सूखे मौसम में जब मच्छरों की संख्या अधिक होती है, व्याधि की बारंबारता में अचानक वृद्धि हो जाती है। दक्षिणी भारत में वर्ष के उत्तरार्ध में यह अधिक प्रभावी होती है। महामारी के गैर सीमित क्षेत्रों में उष्णकटिबंधीय भू-भागों (चीन, कोरिया, थाइलैंड, जापान, वियतनाम, म्यांमार, उत्तरी पूर्वी भारत और पूर्वी रूस) में यह व्याधि ग्रीष्म ऋतु के समापन में प्रकट होती है और सभी आयुवर्ग के लोगों को संक्रमित करती है, विशेषतः बालकों तथा वृद्धवर्ग को।

व्याधिसंवाहक :

हमारे देश में अद्यतन ज्ञात मच्छरों की लगभग 350 प्रजातियों में से JE विषाणु के संवाहक मात्र 11 प्रजातियां हैं। विश्व के विभिन्न भागों में इस रोग के विषाणुवाहक अधिकतर क्यूलेक्स, एडीज, एनाफिलीज़

और मैन्सोनिया प्रजाति के मच्छर होते हैं । अधिकांश संक्रमण विषाणु क्यूलेक्स विश्नई प्रजाति के सदस्य मच्छरों द्वारा संवाहित किये जाते हैं । इस प्रजाति की तीन प्रमुख उपजातियां हैं - क्यूलेक्स टेट्रारिन्कस, क्यूलेक्स स्यूडोविश्नई और क्यूलेक्सविश्नई विश्नुई । इनमें से क्यूलेक्स टेट्रारिन्कस के सदस्यों में सर्वाधिक विषाणु पाये गये हैं । इस उपजाति के मच्छर ग्रामीण क्षेत्रों में धान के खेतों में प्रजनन और आवास करते हैं और वरीयता के अनुसार बड़े घरेलू पशुओं, सुअरों, पक्षियों तथा मनुष्यों के रक्ताहारी परजीवी होते हैं ।

भारत में जापानी मस्तिष्क शोथ-विषाणु का प्राकृतिक चक्र :

दक्षिण-पूर्व एशिया के अन्य देशों की भांति भारत में भी JE विषाणु के प्रसार और अनुरक्षण के हेतु सुअरों की भूमिका प्रधान होती है । यह चक्र सामान्यत: "सुअर-मच्छर-सुअर" के स्वरूप पर आधारित होता है । शूकरों के सीरम के नमूनों के विश्लेषणात्मक परीक्षणों से यह स्पष्ट हो चुका है कि संक्रमण के उत्कर्षी काल में JE विषाणु के प्रतिपिंड उच्च मात्रा में मिलते हैं । इन परीक्षणों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि प्रकृति में सुअर JE विषाणु के दक्ष प्रवर्धक पोषी की भूमिका अदा करते हैं । प्रकृति में असंक्रमित मच्छर सुअरों के रक्तपान के कारण संक्रमित होते रहते हैं । इसका माध्यम सुअरों के शरीर में प्रवाही रूप में JE विषाणुओं की उपस्थति होती है । संक्रमित मच्छर बहिर्जात ऊष्मायन काल समाप्त हो जाने पर विषाणु को असंक्रमित सुअरों में प्रसारित करते हैं और चक्र इसी प्रकार चलता रहता है । सुअर वास्तव में अपरोक्ष संक्रमण से प्रभावित होते रहते हैं । सुअरों के शरीर में प्रजनन की अनुकूल परिस्थितियों में संक्रमित मच्छरों की संख्या और घनत्त्व दोनों ही बढ़ने लगते हैं और संयोगवश ऐसे मच्छरों के मनुष्यों को काटने से मानव संक्रमण में भी वृद्धि होने लगती है । वास्तव में इस संपूर्ण चक्र में मनुष्य एक अंतिम शीर्ष पोषी (Dead End Host) की भूमिका ही अदा करता है । इस प्रकार के पोषी को मच्छर काटने पर असंक्रमित मच्छर पुन: संक्रमित नहीं हो सकते हैं क्योंकि मानव शरीर में प्रवाही स्वरूप में विषाणु रक्त में अत्यल्प संख्या में होते हैं तथा ये अल्पजीवी होते हैं ।

रोगप्रसारी अध्ययनों में यह भी संभावना व्यक्त की गयी है कि पक्षी वर्ग के सदस्य JE विषाणु के अतिरिक्त पोषी होते हैं । पालतू दुधारू पशुओं (विशेष रूप से भैंसों में) सामान्यत: JE विषाणु के प्रतिपिंड पाये गये हैं । परंतु प्रयोगात्मक स्तर पर इन पशुओं के द्वारा विषाणु का मानवीय संक्रमण संभव नहीं हुआ है (चित्र-2 एवं तालिका-2) ।

विकृतिकारी परिवर्तन :

संक्रमण के सुस्पष्ट लक्षणों में प्रमस्तिष्कीय वल्कुट (Cerebral Cortex) का गंभीर ओडीमा (Oedema) केशप्रणाली जन्य अवरोध, रक्तस्राव, परिवहनीय कोशिका वृद्धि तथा ग्लियोमीज़ेनकाइमल ग्रंथिकाओं का प्रकोपन मुख्य हैं । इन सभी लक्षणों में मस्तिष्क का केंद्रीय धूसर द्रव्य (Grey Matter), प्रमस्तिष्कीय वल्कुट, मस्तिष्क प्ररोह और सुषुम्ना अवश्य प्रभावित होते हैं ।

प्राय: इस विषाणु के द्वितीयक आक्रमण को प्रतिरक्षी-काय के सृजन को आसंजित करने से बचाना संभव होता है । विषाणु संक्रमण और JE व्याधि की ऊष्मायन अवधि सामान्यता 5-15 दिन होती है । अचानक आसंजित इस व्याधि की मनुष्यों में मृत्यु दर लगभग 30% होती है । प्रारंभिक लक्षणों में तीक्ष्ण सिरदर्द और सामान्य रोगजन्य शिथिलता प्रमुख होते हैं ।

चिकित्सकीय अभिव्यक्ति :

JE व्याधि में शरीर का तापमान अचानक 106 ^{0}F तक जा सकता है तथा 104 ^{0}F से 106 ^{0}F के मध्य घटता बढ़ता है । JE विषाणु अल्पावधि के लिए ही मानव रक्त में रहता है तदुपरांत यह मस्तिष्क को स्थायी आवास बना लेता है जिसके फलस्वरूप पैरों का पक्षाघात, व्याक्षोभ (Convulsions), निश्चेतना एकटक दृष्टि (Staring vision) जो प्राय: मस्तिष्कक्षति और भयाक्रांत स्थिति के कारण होती है, के लक्षण प्रदर्शित होते हैं । चेहरा और नेत्रों की श्लेष्मा आवरण अतिशय खुले दिखाई देते हैं और बैठने की मुद्रा परिवर्तित हो कर त्रिपादी स्थिति प्रदर्शित करने लग जाती है । इस स्थिति में सिर बाहर की ओर निकल जाता है, घुटने और भुजाएं झुक जाते हैं तथा कंधे वक्ष की ओर मुड़ जाते हैं जिसे त्रिपाद स्थिति भी

तालिका - 2 : विषाणुजन्य मस्तिष्कशोथ व्याधियों का तुलनात्मक विवरण

व्याधि	विषाणु आमान (nm)	प्राथमिक पोषी	संग्राहक	संवाहक	मनुष्यों में मृत्युदर %	व्याधि का वितरण	प्रयोगशाला-निदान	अभ्युक्ति
सेंटलुई मस्तिष्क शोथ	20-30	मनुष्य	मुर्गी, पक्षी	मच्छर (क्यूलेक्स)	5-30	मध्यवर्ती और पश्चिमी अमरीका (ग्रीष्म ऋतु)	सीरम का प्रतिरक्षणात्मक और विश्लेषणात्मक परीक्षण	कोई विशिष्ट उपचार ज्ञात नहीं
जापानी-B मस्तिष्कशोथ	15-50	मनुष्य	मुर्गी, पक्षी स्तनधारी	मच्छर (क्यूलेक्स)	~ 50 (?)	जापान, सुदूर पूर्वी एशिया, भारत, पाकि-स्तान, म्यांमार तथा	उपर्युक्त	उपर्युक्त
पश्चिमी अश्व मस्तिष्क शोथ	25-40	अश्व, खच्चर, मनुष्य	मुर्गी, पक्षी	मच्छर (क्यूलेक्स टास्सेलिस)	~3	श्रीलंका संयुक्त राज्य अमरीका कनाडा (जुलाई-सितंबर)	उपर्युक्त	केवल पशुओं में नियंत्रण हेतु टीकोषधि उपलब्ध
पूर्वी अश्व मस्तिष्क शोथ	25-40	पक्षी, स्तनधारी	पक्षी	मच्छर (एडीस)	50-70	मध्य अटलांटिक राज्य, पूर्वी अमरीका (ग्रीष्म-ऋतु में)	केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से विषाणु पृथक्करण हेतु सीरम और प्रतिरक्षात्मक परीक्षण	उपर्युक्त मानवों में अप्रत्यक्ष संक्रमण संभव
वेनेजुएला अश्वमस्तिष्क शोथ	60-75	अश्व खच्चर	चूहे, गिलहरी	मच्छर क्यूलेक्स, एडीस, बूंद संक्रमण भी)	~0.5	दक्षिणी अमरीका का उत्तरी क्षेत्र, पनामा, दक्षिणी संयुक्त राज्य अमरीका के क्षेत्र	विषाणु का पृथक्करण पूरक स्थिरीकरण से ही संभव है। सीरमीय दृष्टि से लाउपिंग III विषाणु की तरह होता है।	उपर्युक्त
रुसी सुदूर पूर्वीअश्वमस्तिष्क शोथ	15-20	किशोरवय, वयस्क पुरुष	वन क्षेत्रीय स्तनधारी, पक्षी	काष्ठ किलनी (Wood Tick)	~30	रूस के पूर्वी सुदूरवर्ती प्रांत (ग्रीष्म)	सीरम परीक्षण से विषाणु का पृथक्करण संभव है।	विषाणु मल-मूत्र में उत्सर्जित होता है।
लिम्फेसाइटिक कोरिया मस्तिष्क शोथ	40-60	चूहे और 20-30 वर्ष के मनुष्य	चूहे	श्वसन पथ से मनुष्य में संक्रमण	नगण्य	अमरीका (वसंत ऋतु में)	उपर्युक्त	वायुजनित मनुष्यों में संक्रमण संभव होता है।
लाउपिंग- III व्याधि	15-22	भेड़	भेड़	कलनी (Tick)	नगण्य (?)	स्कॉटलैंड तथा उत्तरी-इंग्लैंड	सुषुम्नाद्रव (CSF) सीरम परीक्षण से विषाणु पृथक्करण संभव है।	प्रयोगशाला में संयोग-वश मानव संक्रमण वायुजनित संभव है।

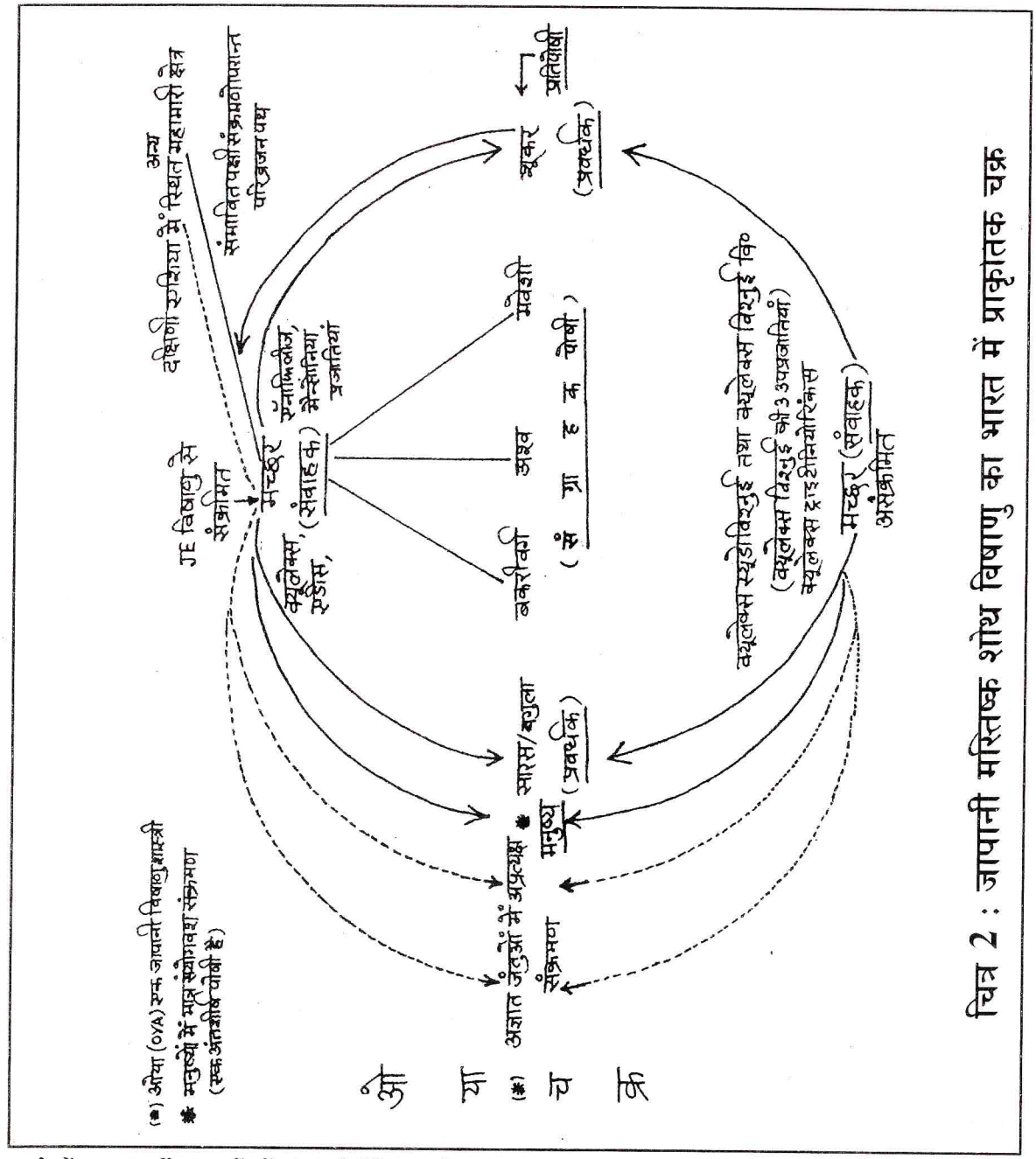

चित्र 2 : जापानी मस्तिष्क शोथ विषाणु का भारत में प्राकृतिक चक्र

कहते हैं । अनुवर्ती लक्षणों में स्टूपर-डेलीरियम कोमा, डिसेरीब्रेट रिजिडिटी, मेनिंगो-इनसीफेलाइटिस, ऊपरी मोटर न्यूरॉन पक्षाघात तथा एक्स्ट्रापिरामिडल लेज़न्स भी प्रदर्शित हो सकते हैं ।

JE व्याधि की एक अन्य जटिल अभिव्यक्ति हाइपोथैलेमिकीय संक्रमण होती है जिसके परिणामस्वरूप लवण व्यर्थता सिन्ड्रोम उत्पन्न हो सकता है । इस स्थिति में रोगी के तापमान में भी परिवर्तन होता है और श्वसन

नियंत्रण केंद्रों की दक्षता में सांघातिक परिवर्तन हो सकता है। मस्तिष्क प्ररोह को भी यह व्याधि प्रभावित करती है। इन सब स्थितियों की उग्रता में मृत्यु की संभावना में वृद्धि हो सकती है। कभी-कभी इस व्याधि से स्वास्थ्य लाभ कर रहे रोगियों में भी सहसा मृत्यु की संभावना रहती है। व्याधि के दूरगामी प्रभावों में स्थायी सेक्वेलेक, मानसिक अस्तव्यस्तता, भावनात्मक अस्थिरता, ऐफ़ेसिया और पक्षाघात प्रमुख हैं। राष्ट्रीय मनोचिकित्सा संस्थान (NIMHANS), बेंगलौर के तंत्रिका रोग विभाग द्वारा किये गये एक अध्ययन में सितंबर 1979 से जनवरी 1980 की अवधि में वार्ड में पंजीकृत लगभग 133 रोगियों में निम्न लक्षण प्रदर्शित हुए :-

1. रोगपूर्व अवस्था के लक्षण (Prodromal stage)
2. विच्छिन्न अवस्था के लक्षण (Abrupt stage)
3. उग्रावस्था के लक्षण (Acute stage)
4. उपोग्रावस्था के लक्षण (Sub-acute stage)
5. क्रमिक अनुवर्ती लक्षण (Gradual Progresive stage)।

व्याधि पूर्वावस्था में ज्वर, सिरदर्द, वमन आदि के लक्षण प्रकट होते हैं। रोग आसंजनोपरांत स्थितियों में शनैः शैनः केंद्रीय तंत्रिका तंत्र प्रभावित होने से उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त आक्षेप, ज्ञानेंद्रियों से संबंधित संघातीय व्यतिक्रम, चालकसंवेदी क्षतियां और सुषुम्नावर्ती उतेजना परिलक्षित होती हैं। निम्न स्तरों पर दृष्टव्य प्रमुख लक्षणों में अनैच्छिक गतियां तथा व्यावहारिक व्यतिक्रम अधिक होते हैं। सामान्यरुप से विच्छिन्नावस्था रोग प्रकट होने के 1-6 घंटों की अवधि तक ही सीमित होती है। उग्रावस्था की अवधि 6-24 घंटे होती है। उपोग्रावस्था में व्याधि 2 से 3 दिनों तक रहती है इसके उपरांत शनैः शनैः उत्तरपूर्वी लक्षण प्रकट होने की अवधि 4-5 दिवस की पायी जाती है। इस उत्तरपूर्वी क्रमिक अवधि के उपरांत केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में व्यतिक्रमों की प्रगति होने लगती है और उग्रतम मस्तिष्कशोथ की स्थिति में विक्षेप, संवेदीय अस्तव्यस्तता, चालक प्रत्युत्तर भ्रंश तथा सुषुम्ना प्रदाह के लक्षण प्रदर्शित होते हैं। रोगी का तापमान 100 ^{0} से 104 ^{0}F के मध्य रहने लगता है। समय-समय पर कंपकपी, झटके एवं अत्युच्च तापमान भी प्रकट होते रहते हैं। व्याधि का चरमोत्कर्ष प्रथम दिन से पहले 4 दिन तक देखा जाता है जब तापमान 106 ^{0}F या अधिक हो सकता है तत्पश्चात् इसमें गिरावट आ सकती है। यदि इसके उपरांत भी ज्वर रहता है तो इसका कारण वक्षप्रदेशीय संक्रमण हो सकता है और रोगी में मस्तिष्क अभिग्रहण (Seizure) भी हो सकता है।

अल्पवय शिशुओं में इस व्याधि के होने पर पुनरावर्ती और अनियंत्रित दौरे तथा मिरगी के लक्षण प्रकट होने लगते हैं परंतु वयस्कों में ऐसा यदाकदा ही देखने में आता है। अत्यधिक चालक संवेदी क्षति के कारण अर्धांगीण पक्षाघात (Hemiplegia) और वाक् संबंधी व्यतिक्रम हो सकते हैं। कुछ व्याधिग्रस्त वयस्कों या वृद्धों में मस्तिष्क प्ररोह के संक्रमण के कारण हाथों और पैरों में पक्षाघात (Quadriplegia) के लक्षण हो सकते हैं। प्रमस्तिष्क में भी इस संक्रमण का प्रभाव कुछ मामलों में देखा गया है। सामान्य रुप से पैरों में स्तंभन (Spasticity) और परिवृत्तीय अकड़न होने लगती है, जिसका कारण आधारभूत गुच्छिकाओं (Ganglia) का संक्रमण होता है। कुछ अतिरेकीय रोगियों में संवेदना के प्रतिफल के रुप में निर्बलीकृत प्रमस्तिष्कहारी उग्रतर आकुंचन (Decorticate decreabate spasms) भी देखने को मिलते हैं।

अनैच्छिक परिचालनों के विभिन्न प्रकार संक्रमण के दूसरे या तीसरे सप्ताह में अधिक स्पष्ट परिलक्षित होने लगते हैं, यथा सिर को आगे - पीछे हिलाना, कोरिया थीटीसिस और कोर्स एरिदमिक झटके जो गर्दन और पैरों में दिखते हैं। 10% रोगियों में आकुंचन (Dystonia) की स्थिति भी हो जाती है। प्रारंभ में तंत्रिकीय अभिव्यक्ति (Nerological manifestations) के अंतर्गत अधिकतर व्यावहारिक व्यतिक्रम, हृदय स्पंदनात्मक परिवर्तन (Gallopic Rhythm), श्वास गति और लय में अस्त व्यस्तता (जो फुफ्फुसीय संक्रमण अथवा ओडीमा के कारण होते हैं) के लक्षण प्रमुख होते हैं। 50 % से अधिक रोगियों में कुपोषण, निर्जलीकरण एवं विद्युत अपघटीय असंतुलन (Electrolytic imbalance) भी परिलक्षित होता है जो मुख्य रुप से उल्टी के परिणामस्वरुप होता

तालिका -3 : मानवीय मस्तिष्क शोथविषाणुव्याधियों में प्रकट ऊतकीय बंधुता के प्रभाव

व्याधि (तंत्रिकीय प्रभाव)	त्वचावर्ती	आंतरिक	श्वसनवर्ती	बहुऊतकीय	अर्बुदजनक
जापानी - B मास्तिष्क शोथ (JE - B)	मोलस्कम कॉन्टोजियोसम (त्वचाशोथ)	संक्रामक यकृत प्रदाह	इन्फ्लूयंज़ा	कॉक्स - सैकी विषाणु संक्रमण (CSI)	रॉउस सारकोमा
सेंट लुई मस्तिष्क शोथ (SLE)	रुबेला (जर्मन खसरा)	सीरम यकृत प्रदाह	सामान्य सर्दी (जुकाम) प्रतिश्याय	डेन्यू ज्वर	आकृतिक फाइब्रोमा

है। कुछ दिनों से लेकर कुछेक सप्ताहों के उपरांत कुछ मामलों में पुनर्जीवनी (Recovery) भी हो जाती है परंतु यह अवधि वास्तव में केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की क्षति पर आश्रित होती है। शीघ्र मृत्यु के प्रमुख कारण प्रमस्तिष्कीय ओडिमा, तंत्र कोशिकीय क्षति, तीव्र फुफ्फुसीय ओडिमा हैं और विलंबित मृत्यु के कारणों में श्वसनीय फुफ्फुसीय शोथ (Broncho pneamonia) ही प्रमुख होता है। (तालिका-3)।

अंतराधारित निदान (Differential Diagnosis) :

अंतराधारित विभेदी व्याधि निदान के परिप्रेक्ष्य में यद्यपि केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के सभी संक्रमणों के लक्षणों का महत्त्व है, तथापि यह निम्न कारकों पर निर्भर होता है :-

1. चिकित्सकीय निदान
2. भौगोलिक स्थितियां
3. मच्छर काटने के प्रमाण अथवा मच्छरों की अत्यधिक संख्या।

केंद्रीय तंत्रिकातंत्र के प्रमुख प्रासंगिक संक्रमणों के उल्लेखनीय विभेदी लक्षणों का विवरण इस प्रकार है :-

(अ) उग्र अर्बुदीय सुषुम्नाशोथ (Acute Tubercular Meningitis - ATM) :

इस संक्रमण का तीव्रतम आपतन 6 मास से 3 वर्ष की आयु तक ही सीमित होता है। इसमें मस्तिष्कावरणीय अवयव स्पष्टरूप में विद्यमान रहते हैं और तीव्र ज्वर, आक्षेप, सिरदर्द और वमन के लक्षणों के साथ-साथ सुषुम्नावर्ती उत्तेजना दृष्टिगोचर होते हैं। गले की दुर्नम्यता (Stiffness), तिर्यक्दृष्टि (Squint) और पक्षातिविन्यास (Ptosis) भी होती है। व्याधि की उत्तरावस्था में अर्धपक्षाघात की अभिव्यक्ति और मस्तिष्कावरणीय क्षति भी प्रकट हो सकती है। अंततः मस्तिष्क सुषुम्नावर्ती प्रकोपनहीन निश्चेतना भी हो सकती है। JE में सुषुम्ना द्रव (CSF) में ग्लूकोज का सामान्य स्तर होता है परंतु ATM में स्तरप्रोटीन वर्धित रहता है और ग्लूकोज निम्न स्तर पर होता है।

(ब) मस्तिष्क मलेरिया :

यह व्याधि प्लाज़्मोडियम फैल्सीपेरम के संक्रमण से उत्पन्न होती है। बालकों में इस व्याधि के प्रमुख लक्षणों में अर्द्धपक्षाघात, मिरगी वाचाघात, असंयुक्त दृष्टि, अनैच्छिक नेत्र चालन अनुमस्तिष्कीय गति व्यतिक्रम, प्रमस्तिष्कीय अधोसांद्रता (Hypotonia), मनोरोगीय असामान्यताएं, प्रकंपन, दृष्टि हीनता एवं मल-मूत्र विसर्जन नियंत्रणहीनता मुख्य होते हैं। रोगी के CSF में अल्प मात्रा में लिंफेसाइटिक प्लवणता (Pleocytosis) और वर्धित प्रोटीन सांद्रता प्रदर्शित होती है। इसके अतिरिक्त रक्ताल्पता, निम्न रक्तशर्करास्तर, रक्त की फिल्मों में दृष्टव्य मुद्रिका स्वरूपी गैमीटोसाइट तथा प्लीहा (Spleen) की असामान्य वृद्धि भी परिलक्षित होती है। रोगाणु की पहचान प्रतिरक्षीय वर्णक्रम आलेख वाले डिपस्टिक परीक्षण से की जा सकती है। उपर्युक्त अधिकांश लक्षण JE व्याधि में नहीं होते हैं।

(स) रे का संलक्षण (Reye's Syndrome) :

यह व्याधि वसीय यकृत सह मस्तिष्कप्रदाह (Fatty liver with Encephalopathy) के नाम से भी जानी जाती है। यह कष्टदायक रोग 15 वर्ष तक के किशोरों में ही पाया जाता है। व्याधि की प्रारंभिक स्थिति (1-3 दिनों में) इन्फ्लूएंजा अथवा चेचक एवं निरंतर वमन की प्रवृति के लक्षण प्रकट होते हैं। शीघ्र ही आक्षेप, निश्चेतना वृत्ति और CNS क्षति के लक्षण भी परिलक्षित हो जाते हैं। यकृतप्रदाह अनुपस्थित होता है। रक्त परीक्षणों में सीरम एमिनो ट्रांसफेरेज़ स्तर और प्रोथ्रोम्बिन मोचन समय वर्धित होते हैं। इसके अतिरिक्त अधोग्लूकोज़रक्तता (Hypoglyeemia) एवं उपापचयी अम्लरक्तता (Acidosis) भी पायी जाती है।

(द) उग्रशाकाणुजन्य सुषुम्नाशोथ (Acute Bacterial Meningitis) :

अधिकांश शाकाणुजन्य सुषुम्नाशोथों में ज्वरातिरेक, सिरदर्द, प्रकाशभय, विक्षेप, चेतना व्यतिक्रम, गर्दन तथा पीठ की दुर्नम्यता प्रदर्शित होती है। कुछ विशिष्ट संक्रमणों में पृथक लक्षण भी होते हैं। तथा मेनिंगोकॉकसजन्य शोथ में त्वचावर्ती क्षरण (Rash) प्रकट होते हैं। शाकाणुजन्य मस्तिष्कशोथ में तीव्र कर्ण प्रदाह (Mid Ear-Otitis media), साइन्यूसाइटिस, निमोनिया, शिराघात के लक्षण विद्यमान रहते हैं। CSF परीक्षणों में श्वेत रक्त कणिकाएं 1,000-10,000/ मिमी.^{3} तक होती है। प्रोटीनस्तर प्रवर्धन होता है तथा रक्तशर्करी स्तर निम्न होता है। ग्राम वर्णावृत्ति तथा प्रवर्धन विधियों द्वारा CSF में शाकाणुओं की पहचान की जा सकती है।

(य) प्रमस्तिष्कीय विद्रधि (Cerbral Abscess)

व्याधि की उग्रअवस्था में तीव्र शिरोशूल, वमनप्रवत्ति, अन्यान्य नाड़ी संबंधित लक्षण प्रकट हो सकते हैं। 40% रोगियों में ज्वर पाया गया। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के निष्फलीकरण के प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। इस रोग की निश्चयात्मक पहचान CT स्कैन से करनी संभव होती है।

(फ) केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की विषाणुजन्य व्याधियां :

विषाणुओं के द्वारा CNS में कई प्रकार के संक्रमण होते हैं। उग्र विषाणु संक्रमणों में मस्तिष्क सुषुम्नावर्ती शोथ, मस्तिष्कशोथ और मज्जा प्रदाह प्रमुख हैं। साधारणतया इन संक्रमणों में क्षेत्रीयता सीमित न होने के कारण इनका निदान और उपचार कष्टसाध्य होते हैं। इसी कारण इस प्रकार की व्याधियों के नाम प्रायः संयुक्त और जटिल होते हैं। यथा - मेनिंगोएनसिफैलाइटिस, एनसिफैलोमायलिटिस।

(ज) विषाणुजन्य सुषुम्ना शोथ :

इस व्याधि का नाम शाकाणुविहीन सुषुम्नाशोथ भी है। इस व्याधि के प्रारंभ से ही उग्रावस्था धारणकर लेने के फलस्वरूप तीव्र ज्वरातिरेक (104^0 - $106\ ^0$F तक), CSF में श्वेतरक्त कणिकाओं में वृद्धि और जीवाणु अनुर्वर संवर्धन (Bacteriologically Sterile Culture) प्रदर्शित होते हैं। आम तौर पर सभी विषाणु जन्य शोथों में से प्राप्त जानकारी के माध्यम से विषाणु के बारे में निर्णयात्मक निश्चय करना संभव होता है। यथा -गलसूजन में होने वाली "पैरोटाइटिस" या त्वचाघात (Skin Rash) जो कौक्स मैकी विषाणु के संक्रमण से होता है। CSF में लिम्फोसाइट अधिक पायी जाती हैं (10-100/mm^3), शर्करा, प्रोटीनस्तर सामान्य होते हैं। विशिष्ट परीक्षणों में सीरम परीक्षण (उग्रावस्था और रोग से मुक्ति की अवस्था में प्राप्त किये गये) विश्वसनीय होते हैं।

(ह) विषाणुजन्य मस्तिष्कशोथ(Encephalitis) :

इस प्रकार के शोथ में प्रमस्तिष्क के दोनों गोलार्द्ध, अनुमस्तिष्क और प्ररोह विशेष रूप से प्रभावित होते हैं। कई विषाणुरहित व्याधियों में भी मस्तिष्क शोथ के लक्षण दृष्टिगोचर हो सकते हैं। प्रारंभिक अवस्था भ्रामक होती है और निम्न व्याधियों को भ्रमवश विषाणु जन्य ही मान लिया जाता है :-

1. संक्रमणात्मक व्याधि जो सामान्यतः शाकाणुओं, कवक, प्रोटोज़ोआ अथवा रिकेटसिया के संक्रमणों से होती है। इसमें मस्तिष्क विद्रधि, सुषुम्नाशोथ अथवा मलेरिया के सदृश लक्षण होते हैं।
2. विषाक्तता जन्य व्याधि की स्थितियां सैलीसिलेटों, भारी धातुओं अथवा बारबीचुरेट्स की अधिक ख़ुराक लेने के परिणामस्वरूप होती हैं। इनमें भी स्मृति,

3. तंत्रिकीय व्याधियों का प्राकट्य कोलेजेन एवं सघःजात (Nascent) कोशिकाओं के अनियंत्रित हो जाने के फलस्वरूप होता है । इन स्थितियों में तंत्रिका तंत्र नियंत्रणहीन हो जाता है और CNS संबंधी सभी व्यतिक्रम प्रदर्शित हो सकते हैं ।
4. अंतः स्रावी एवं उपाचयी अनियमिताओं से उत्पन्न रोगों के प्रमुख कारणों में सोडियम, कैल्शियम अथवा कार्बोहाइड्रेट के असंतुलन और फ़ियोक्रोमोसाइटोमा का उद्‌भव हो सकता है। इन रोगों के कारण मानसिक विकृति, वमन, आक्षेप और चेतनाहारी (अल्पावधिक) लक्षणों की अभिव्यक्ति होती है ।

उपर्युक्त जानकारी, मौसम संबंधी, भौगोलिक तथा आयुवर्ग पर आधारित ज्ञान के आधार पर JE और अन्य विषाणु जन्य मस्तिष्क शोथों का निर्णयात्मक निर्धारण किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त सीरम और रक्त परीक्षणों तथा मस्तिष्क सुषुम्नाद्रव के विश्लेषणात्मक परीक्षण से इस व्याधि का निश्चित निदान करना संभव है ।

जापानी मस्तिष्कशोथ का प्रयोगात्मक निदान :

JE व्याधिग्रस्त रोगियों में संपूर्ण श्वेतरक्त कणिकाओं की संख्या में उच्चस्तरीय वृद्धि के साथ-साथ ESR और पॉलीमार्फ़ कोशिकाओं की भी वृद्धि प्रदर्शित होती है । रक्त शर्करा स्तर सामान्य रहता है । म. सु. द्रव में भी कोशिकातिरेक तथा श्वेतरक्त कणिका स्तर 50-500 प्रति मिमी.^{3} होता है । CSF में प्रोटीन की मात्रा आंशिक रूप से वर्धित पायी जाती है जिसमें सीरम के नमूने व्याधि की उग्रतम अवस्था तथा रोगमुक्ति अवस्था दोनों से ग्रहण किये जाते हैं । सामान्यतया 3 प्रमुख सीरम परीक्षण करना आवश्यक होता है :-

1. पूरक स्थापनापरिक्षण (Complement Fixation Test)
2. हीमोएग्लूटिनेशन परीक्षण (HAI Test)
3. उदासीनीकरण परीक्षण (Neutralization Test)

• उपर्युक्त परीक्षण विषाणु निर्धारण के हेतु विश्वसनीय माने जाते हैं। सीरम को उग्रतम अवस्था में लेना अत्यावश्यक होता है क्योंकि JE विषाणु का पृथक्करण अतिशय कठिन होता है । पुनश्च, संक्रमण जटिल और द्रुत गति से अग्रसारी होता है और विषाणु स्थिर नहीं रहते हैं । लक्षणों के दिखाई देने से पूर्व ही ये भ्रमणशील हो जाते हैं । कुछ चिकित्सकों द्वारा इस विषाणु के निश्चयात्मक निदान हेतु ऐलिसा और एकल रेडियल हीमोलाइसिस एवं प्रतिरक्षणात्मक परीक्षण भी किये गये हैं । अमरीकी सहकारी नैदानिक प्रौद्योगिकी अनुसंधान केंद्र में JE विषाणु के निर्णय हेतु IgM संबद्ध ELISA परीक्षण किये जा चुके हैं । इनमें उच्च संवेदनशीलता और विशिष्टता रहती है । इन दोनों परीक्षणों के द्वारा जापानी मस्तिष्कशोथ और डेंग्यू में भेद करना सरल हो गया है ।

व्याधि का पूर्वानुमान :

JE में सभी फ्लेवीविषाणुओं के द्वारा उत्पन्न व्याधियों की तुलना में सर्वाधिक मृत्यु होती है । सामान्यतः मृत्यु संभावना 30-50 % होती है । इस रोग के प्रतिफलों में पक्षाघात, विक्षेप, मानसिक विकलांगता, दृष्टिदोष, व्यावहारिक उपद्रव और अव्यवस्था होते हैं ।

नियंत्रणात्मक अनुदेश :

JE के संक्रमण प्रसार की सीमित जानकारी उपलब्ध होने के कारण किसी प्रतिविषाणु औषधि की व्याधि नियंत्रण क्रियाशीलता संदेहास्पद है अतएव इस व्याधि के सफल नियंत्रण हेतु संक्रामक विषाणु संवाहकों के नियंत्रण के माध्यम से प्रयत्न करना ही श्रेयस्कर होता है । कुछ इस प्रकार के अनुदेश निम्नांकित हैं :- (तालिका- 4 भी देखें)

1. मच्छरों और अन्य विषाणु संवाहकों पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए रसायनों का तुषारीय छिड़काव (Fogging) करना चाहिए ।
2. धान की खेती हेतु समुचित जल-प्रबंधन के द्वारा JE विषाणु के संवाहक प्रजनन को नियंत्रित करने में सफलता मिलती है ।
3. नीम, धान की भूसी तथा बेन्ज़ोइन को अग्नि में डालकर उत्पन्न किये धुएं को घरों के अंदर प्रसारित करने से सभी प्रकार के उड़ने वाले कीटों और विषाणु संवाहकों का प्रभावी विनाश संभव है ।
4. पालतु पशुओं को घरों से न्यूनतम 3 किमी. दूरी रखने का प्रबंध करना चाहिए, क्योंकि क्यूलेक्स प्रजाति के मच्छर (JE विषाणु संवाहक) 2 किमी. से अधिक दूरी

तालिका - 4 : जापानी मस्तिष्क शोथ (JE) विषयक प्रमुख तथ्य

1. JE विषाणु मच्छरों की एक विशेष प्रजाति **Culex Vishnui** के द्वारा फैलता है ।
2. जून से सितंबर के महीनों में प्रमस्तिष्कीय ज्वर की संख्या में वृद्धि हो जाती है तदुपरांत क्रमिक कमी आने लग जाती है ।
3. पथरीली भूमि और जलापूरित गड्ढों, तालाबों वाले स्थानों में JE विषाणु के संवाहक मच्छर अत्यधिक मात्रा में पाये जाते हैं ।
4. धान के खेतों में विषाणु संवाहक मच्छर प्रजनन चक्र पूरा करते हैं । बड़े शहरी क्षेत्रों में मस्तिष्क शोथ कम पाया जाता है परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में इस व्याधि का अधिक प्रकोप होता है ।
5. पक्षियों के द्वारा JE विषाणु नगर क्षेत्रों में भी पहुंच सकते हैं ।
6. JE विषाणु के प्रधान पोषी पशु होते हैं । मच्छरों की भूमिका मात्रसंवाहक रूप में होती है । पोषी वर्ग में सुअर, गाय, बैल, भैंस, गौरैया और तोते हैं ।
7. JE विषाणु के प्रधान पोषियों में सुअरों में संक्रमण उच्चस्तरीय पाया जाता है परंतु उनको यह विषाणु व्याधि आक्रांत नहीं कर पाता है ।
8. JE विषाणु का संक्रमण सुअरों में उग्रस्तर अर्जित करने के उपरांत मच्छरों के माध्यम से मनुष्यों में पहुंचता है ।
9. ये विषाणु मानव शरीर में अल्पावधि के लिए रक्त में रहा करते हैं और उग्रसंक्रमण के रूप में उपस्थिति प्रदर्शित करते हैं परंतु संक्रमित मनुष्यों से यह विषाणु स्वस्थ मनुष्यों में नहीं प्रसारित हो सकता है ।
10. JE व्याधि के वितरण क्षेत्रों में प्रायः मनुष्य और पशु अत्यंत निकट रहते हैं, अतः मनुष्य इसके रोगाणु का एकांतरीय पोषी बन जाता है ।
11. JE व्याधि के उपचार और नियंत्रण के उपाय अभी तक पूर्ण सफल नहीं हुए ।

तक नहीं उड़ सकते है ।

5. मच्छर प्रतिकर्षक अगरबत्ती / पाउडर के धुएं का प्रयोग करना लाभकारी होता है ।
6. मच्छरदानी का प्रयोग अवश्य करें ।
7. यथासंभव पसीने से बालकों और स्वयं का बचाव करें और शारिरिक स्वच्छता रखें, प्रतिदिन स्नान करें ।
8. नीम तेल अथवा तीव्र गंधवाले अन्य तेलों की गंध से मच्छर दूर भागते हैं । अतएव इनका अधिक प्रयोग करना भी लाभदायक होता है ।

❑❑❑

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2000) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

जीन परिवर्तित भोजन - स्वास्थ्य के दरवाजे पर खतरे की नयी दस्तक

डॉ. राज किशोर
डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय,
फैजाबाद

" पुराणमित्येव न साधु सर्वम ।
नवीनमित्येव न साधु सर्वम ॥"
- सूक्ति ।

सभी पुरानी बातें अच्छी हों, यह ज़रूरी नहीं और यह भी ज़रूरी नहीं कि सभी नयी बातें अच्छी हों । आने वाले दिनों में सुरसा के मुख की भांति विश्व की तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या को तन ढकने के लिए कपड़े और रहने के लिए मकान से भी पहले जिस चीज की सबसे ज्यादा आवश्यकता होगी वह है भोजन । अनगिनत उपलब्धियों से भरपूर बीसवीं सदी इतिहास की चीज हो चुकी है फिर भी भारत सहित विश्व के कई देशों में लोग भूख के कारण अकाल मृत्यु के शिकार हो रहे हैं । वहीं दूसरी ओर भारत में कभी-कभी अनेक रोग-व्याधियों के कारण प्रति एकड़ या तो उपज इतनी कम हो जाती है कि किसान को अपने परिवार के लिए वर्ष भर के गुजर-बसर के लिए भी पर्याप्त अनाज नहीं मिल पाता है या किसान को इतना नुकसान हो जाता है कि उसे आत्महत्या करनी पड़ जाती है । इसी समस्या से निपटने के लिए जीन परिवर्तित भोजन संबंधी खोज हुई । इससे जुड़े विवादों के प्रति इस लेख में कुछ जानकारी दी गयी है ।

संपूर्ण विश्व में फसलोत्पादन बढ़ाने एवं विभिन्न रोग-व्याधियों से फसलों की सुरक्षा हेतु विभिन्न प्रकार की रसायनिक दवाओं का प्रयोग किया जाता है । इन रसायनों के प्रयोग से कुछ हद तक यद्यपि फसलों की सुरक्षा हो जाती है परंतु एक ओर जहां इन रसायनों के प्रयोग से पर्यावरणीय समस्याएं बढ़ती जा रही हैं वहीं दूसरी ओर रोग उत्पन्न करने वाले विभिन्न कारक यथा कवक, जीवाणु, विषाणु एवं कीट-पतंगे शनैः-शनैः इन रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित करते जा रहे हैं जिसके कारण किसानों को हर बार इन रसायनों की सांद्रता एवं उपभोग की मात्रा बढ़ानी पड़ जाती है परंतु फिर भी फसलें बर्बाद हो जाती हैं । इन सभी समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए वैज्ञानिकों ने ट्रांसजेनिक (जीन परिवर्तन) तकनीक की सहायता से ऐसी फसलों का विकास करना प्रारंभ किया जिनमें रोग-व्याधियों एवं कीड़े-मकोड़ों से स्वयं को बचा लेने की क्षमता होने के साथ-साथ प्रति एकड़ ज्यादा से ज्यादा पैदावार भी हो ।

ट्रांसजेनिक पौधे तैयार करने के लिए वैज्ञानिक इच्छित गुण वाले किसी भी जीन, जो किसी जीवाणु, कीटाणु, पौधे या अन्य किसी बाह्य स्रोत से प्राप्त किया गया हो, को वांछित पौधे के डी. एन. ए. में प्रविष्ट करा देते हैं जिससे बाह्य जीनयुक्त उस नये पौधे में अधिक उपज देने या किसी रोग विशेष या किसी हानिकारक कीट विशेष से लड़ सकने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है । दूसरे शब्दों में अच्छी पैदावार पाने और उन्हें कीटनाशकों से या अन्य व्याधियों से बचाने के लिए विभिन्न इच्छित फसलों में कोई बाह्य कीटनाशक या अन्य व्याधि विशेष नाशक जीन समाविष्ट कर दी जाती है । इन जीन परिवर्तित फसलों को विभिन्न नामों यथा, 'हाईटैक फसल' या 'जीन परिवर्तित फसल,' 'जीन मॉडीफॉइड फसल', 'जेनेटिकली इंजीनियर्ड फसल' या जैविक रूप से परिष्कृत फसल' के नाम से पुकारा जाता है । अभी तक जीन

परिवर्तित भोजन का प्रचलन केवल पश्चिमी देशों, विशेषकर अमरीका और यूरोपीय देशों में ही है, परंतु इस प्रकार के कृषि उत्पादों में चूंकि समाविष्ट की गयी बाह्य जीन के गुण-दोषों का मानव शरीर पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों का अभी तक समुचित एवं व्यापक अध्ययन नहीं हो सका है, इस कारण लोग ऐसे फसलोत्पाद के उपभोग से डर रहे हैं। उपभोक्ता के साथ-साथ वैज्ञानिक समुदाय भी इस बात से सशंकित हैं कि ऐसे फसलोत्पाद के उपभोग से यदि कोई विकृति उत्पन्न हो जाय जिसकी चिकित्सा-विज्ञान में कोई चिकित्सा ही न हो तो मानव जाति को अपूर्णनीय क्षति हो सकती है।

जीन परिवर्तित भोजन की इसी संभाव्यता से डर कर कई यूरोपीय देशों जैसे फ्रांस, ऑस्ट्रिया एवं जर्मनी आदि ने अमरीका द्वारा विकसित जीन परिवर्तित फसलों एवं उनके उत्पादों के अपने यहां आयात पर पूर्ण रोक लगा दी है। ब्रिटिश सरकार ने जीन परिवर्तित भोजन के विषय में उठ रहे विवादों के चलते अपने यहां के स्कूलों में ऐसे भोजन के वितरण एवं उपभोग को तत्काल प्रभाव से प्रतिबंधित कर दिया है। उल्लेखनीय है कि अधिक पोषकता प्रदान करने हेतु इंग्लैंड और वेल्स के छब्बीस हजार स्कूलों के एक करोड़ छात्रों को प्रतिबंध के पूर्व तक जीन परिवर्तित भोजन का वितरण किया जाता रहा है। ब्रितानी नागरिक भी इस तरह के कृषि उत्पादों से दूर ही रहना चाहते हैं। ब्रितानी नागरिकों का मानना है कि इस तरह का भोजन अपने साथ विभिन्न प्रकार के ऐसे रोगों को भी लायेगा जिनकी संभवत: चिकित्सा ही न हो पायेगी। वहां के छोटे किसानों का भी यह मानना है कि इन जीन परिवर्तित फसलों से केवल बड़े किसानों एवं व्यापारियों को ही लाभ मिलेगा और शनै:-शनै: कृषि में उन्हीं का वर्चस्व हो जायेगा। यूरोपीय समुदाय के लोगों में भी इस तरह के कृषि उत्पादों को खाने के विषय में वैचारिक मतभेद हैं।

अमरीका में इस प्रकार की हाई-टैक फसलों को कम विरोध सहना पड़ रहा है। अमरीका में अनेक वैज्ञानिकों, सरकारी अधिकारियों एवं व्यापारियों के अनुसार अभी तक इन जीन परिवर्तित कृषि उत्पादों का मानव समुदाय पर कोई भी गलत प्रभाव नहीं पड़ा है और न ही भविष्य में पड़ने की संभावना है। उनके अनुसार अद्‌भुत क्षमता वाली जीन परिवर्तन तकनीक से विकसित ये प्रजातियां न सिर्फ उपज देने वाली हैं वरन साथ ही उनमें रोगों से लड़ने की क्षमता भी विद्यमान रहती है जिसके फलस्वरूप रासायनिक दवाओं के उपयोग की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है जिससे कृषि उपज की लागत घटने के साथ-साथ प्रदूषण की संभावनाएं भी कम हो जाती हैं। इन अमरीकी वैज्ञानिकों के अनुसार ट्रांसजेनिक तकनीक द्वारा मात्र एक या दो बाह्य जीनों को ही किसी अन्य पौधे में समाविष्ट कराया जाता है जबकि साधारण पौध प्रजनन में तो सैकड़ों जीन्स एक पौधे से दूसरे पौधे में समाविष्ट हो जाती हैं परंतु यहां यह ध्यान रखने की बात है कि साधारण प्रजनन की प्रकिया प्राकृतिक होती है और उसके हानि-लाभ से संपूर्ण विश्व भिज्ञ है। वैसे अभी तक केवल रोगों से स्वयं को बचा लेने वाले मक्का एवं कीटों से स्वयं को सुरक्षित कर लेने वाली सोयाबीन की जीन परिवर्तित किस्मों को ही उगाने एवं बाजार में बेचने या निर्यात करने की अनुमति अमरीकी सरकार ने एक बड़ी अमरीकी बायोटैक्नोलॉजिकल कंपनी 'मोन्साटों' को दी है।

विवाद की शुरूआत :

जीन परिवर्तित भोजन के बारे में वर्तमान में छिड़ा विवाद उस समय सुर्खियों में आया जब 'रीवेट रिसर्च इंस्टीट्यूट' ब्रिटेन के प्रोफेसर अरपाद पुस्जटाई ने जीन परिवर्तित भोजन संबंधी अपनी आशंकाओं से विश्व को अवगत कराया। प्रो. पुस्जटाई उक्त संस्थान में जीन परिवर्तित आलुओं पर शोध कर रहे थे। डॉ. पुस्जटाई जिन आलुओं के प्रभाव का अध्ययन कर रहे थे उनमें एक प्राकृतिक कीटनाशक 'लैक्टिन' उत्पन्न करने वाले बाह्य जीन को समाविष्ट किया गया था। यह कीटनाशक एक प्राकृतिक प्रोटीन है। चूहों पर किये गये अपने अध्ययन से उन्हें जो परिणाम प्राप्त हुए उससे वे स्तब्ध रह गये। डॉ. पुस्जटाई ने देखा कि जीन परिवर्तित आलुओं को खाने के बाद चूहों का विकास रुक गया और उनकी रोग प्रतिरोध क्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा। ये परिणाम

इस बात का स्पष्ट संकेत थे कि उक्त जीन परिवर्तित आलू की किस्म मनुष्यों के खाने के लिए सुरक्षित नहीं है। हालांकि डॉ. पुस्जटाई ने छह माह तक अपने उक्त निष्कर्षों के विषय में चुप्पी साधे रखी। इसका एक कारण तो यह था कि वे अपने शोध निष्कर्षों को स्वयं ही भली भांति सत्यापित कर लेना चाहते थे और दूसरा कारण यह कि अपने संस्थान के साथ अनुबंध की शर्तें उन्हें इस बात की अनुमति नहीं देती थीं कि वे अपने निष्कर्षों को सार्वजनिक करें। लेकिन डॉ. पुस्जटाई अधिक समय तक अपने आप को रोक नहीं सके और अंततोगत्वा उन्होंने अपनी भयावह आशंकाओं से संपूर्ण विश्व को अवगत करा दिया। इस भयावह सच्चाई को उजागर करने का परिणाम डॉ. पुस्जटाई को उक्त इंस्टीट्यूट से अपने निष्कासन के रूप में तुरंत ही भुगतना पड़ा। हालांकि उनके निष्कर्षों को अपर्याप्त और अपरिपक्व बताकर हवा में उड़ाने की चेष्टा भी की गयी परंतु विश्व के 13 अन्य देशों के 20 वैज्ञानिकों ने उनके शोध परिणामों की पुष्टि की और उन्हें महत्वपूर्ण बताते हुए उनके निष्कासन की निंदा भी की। इस संपूर्ण प्रकरण में जीन परिवर्तित फसलों की खेती करने वाली अमरीकी कंपनी 'मोन्सांटो' का आचरण बहुत ही संदेहास्पद रहा। इस कंपनी ने जीन परिवर्तित भोजन के बारे में भ्रामक और असत्य सूचनाएं फैलाकर संपूर्ण विश्व समुदाय को गुमराह करने का प्रयास किया। कंपनी ने अपनी इसी प्रोपेगंडा नीति के तहत यह दावा किया था कि जीन परिवर्तित आलू को बीस देशों में स्वीकृति मिल चुकी है और जीन परिवर्तित टमाटर के लाभ सिद्ध हो चुके हैं, जबकि यह दोनों ही दावे सच्चाई से परे थे।

जीन परिवर्तित भोजन का जिन्न अब तक बोतल से बाहर आ चुका था जिसके फलस्वरूप पर्यावरण सुरक्षा और जन-स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्यरत अनेक संस्थाओं ने डॉ. पुस्जटाई के शोध-परिणामों को आधार बनाकर जीन परिवर्तित भोजन के विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया। इन आंदोलनों के शुरु होते ही शीघ्र ऐसी फसलों से होने वाले अन्य खतरों की जानकारी भी विश्व को मिलने लगी। संपूर्ण विश्व में पर्यावरण सुरक्षा एवं संरक्षा से जुड़े अनेक लोगों का कहना है कि प्रकृति से खिलवाड़ की चुभन हमें उस समय महसूस होगी जब इन जीन परिवर्तित फसलों से कोई जीन खर-पतवारों में चली जायेगी जो उन्हें इतना मजबूत बना देगी कि वे इन्हें नष्ट करने वाले रसायनों से भी नष्ट न किये जा सकेंगे। कुछ जनसेवी संस्थाओं का मानना है कि ये हाई-टैक भोजन केवल उन बहुराष्ट्रीय कंपनियों की दिमागी उपज है जो विश्व के उपभोक्ता बाजारों पर कब्जा जमाकर येन केन-प्रकारेण अपना माल बेच कर अधिकाधिक मुनाफा कमाना चाहते हैं। विश्व में खाद्यान्न समस्या के घटने या बढ़ने से उनका कोई सरोकार नहीं है।

जीन परिवर्तित खाद्य का एक अन्य खतरनाक पहलू यह भी है कि इसका उपभोग करने वाले यह नहीं जान पाते हैं कि वे जो भोजन खा रहे हैं वह जीन परिवर्तित है क्योंकि ऐसे खाद्यान्न या इनसे बनी अन्य उपभोक्ता वस्तुओं पर इस विषयक कोई सूचना अंकित नहीं की जाती है। जीन परिवर्तित खाद्य-पदार्थों को अब अन्य फास्ट-फूड्स, विभिन्न प्रकार के पेय एवं बिस्कुट आदि के निर्माण में भी उपयोग में लाया जा रहा है परंतु इन खाद्य-पदार्थों का उपभोग करने वाले इस तथ्य से पूर्णतया अनभिज्ञ होते हैं कि वे जो खाद्य-पदार्थ खा रहे हैं वह जैविक रूप से परिष्कृत हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनी 'मोन्सांटो' द्वारा विकसित जीन परिवर्तित मक्का और सोयाबीन में से सोयाबीन ऐसा ही एक कृषि उत्पाद है जिसे बगैर किसी जन-स्वास्थ्य संबंधी सुरक्षात्मक परीक्षण या बगैर किसी वैज्ञानिक जाँच-परख के विभिन्न भोज्य पदार्थों यथा, डबलरोटी, चॉकलेट, शिशु-आहार आदि में धड़ल्ले से मिलाया जा रहा है। इस सोयाबीन पर 'मोन्सांटो', द्वारा विकसित 'राउंड अप' हर्बीसाइड (खर-पतवार नाशक) का छिड़काव किया जाता है। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार इस हर्बीसाइड के छिड़काव से पौधों में फाइटो-एस्ट्रोजिन नामक हार्मोन का स्तर आवश्यकता से अधिक बढ़ सकता है। यह हार्मोन मनुष्यों में पाये जाने वाले सेक्स हार्मोन्स की भांति ही कार्य करता है और ऐसे रसायनयुक्त पौध उत्पादों के उपभोग से मानव शरीर पर पड़ने वाले सुप्रभावों या दुष्प्रभावों के बारे में उक्त कंपनी

ने मौन साध रखा है।

जीन परिवर्तित कृषि उत्पादों पर सपूंर्ण विश्व में उठे इन विवादों के मद्देनजर यूरोपीय संघ ने ऐसे कृषि उत्पादों के उत्पादकों एवं इन उत्पादों के उपयोग से विभिन्न खाद्य-पदार्थ बनाने वाली सभी कंपनियों को अपने ऐसे सभी भोज्य पदार्थों पर यह सूचना अंकित करने के निर्देश जारी किये हैं कि इन्हें बनाने में जीन परिवर्तित कृषि उत्पादों का उपयोग किया गया है। यद्यपि अधिकांश अमरीकी नागरिक इस तरह के जीन परिवर्तित भोज्य पदार्थों को बेहिचक खा रहे हैं परंतु इन खाद्य पदार्थों पर उठे विवादों के चलते अमरीका प्राकृतिक खाद्य-पदार्थ बेचने वाली दुकानों की श्रृंखलाओं ने समवेत रूप से निर्णय लिया है कि वे जैविक रूप से परिष्कृत खाद्य-पदार्थों वाले उत्पादों को बेचना बंद कर देंगे। अमरीका में 103 सुपर बाजारों की श्रृंखला वाली कंपनी 'होल फूड' एवं 71 स्टोरों की श्रृंखला वाली कंपनी 'वाइल्ड ओट्स' ने कहा है कि वे अपने ट्रेड मार्क के अंतर्गत अपने उत्पादों में जैविक रूप से परिष्कृत खाद्य उत्पादों विशेषतया मक्का और सोयाबीन का उपयोग बंद कर देंगे। 'होल फूड' के उपाध्यक्ष मार्गेट विटनबर्ग के शब्दों में, "हमारे कई ग्राहकों ने जेनेटिक इंजीनियरिंग वाले खाद्य-पदार्थों को लेकर चिंता जाहिर की है और हम उनके लिए विकल्प उपलब्ध करवाना चाहते हैं।" 'वाइल्ड ओट्स' के अधिकारियों ने भी एक बयान में कहा है कि, "निर्माता और वितरक नियमित रूप से जैव परिष्कृत बीजों के साथ प्राकृतिक बीज मिलाकर बेचते हैं। इसलिए पर्यावरणीय परीक्षणों की आवश्यकता है।" हमारा मानना है कि और अधिक व्यापक मानवीय और विश्व के अनेक वैज्ञानिकों ने यह चेतावनी दी है कि जीन परिवर्तित फसलों से अनेक कीट-पतंगों की पूरी प्रजातियों के ही विलुप्त हो जाने का खतरा उत्पन्न हो जायेगा। ब्रिटिश वैज्ञानिकों के मतानुसार जीन परिवर्तित फसलों के पराग कणों से अनेक पक्षियों के भोजन की पूरी श्रृखंला के प्रभावित हो जाने की आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता है। कार्नेल विश्वविद्यालय, अमरीका के अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार जीन परिवर्तित मक्का के पराग कणों से अमरीका के गेहूं उत्पन्न होने वाले क्षेत्रों में पायी जाने वाली मोनार्क प्रजाति की तितलियों के लुप्त हो जाने की आशंका है।

जीन परिवर्तित कृषि उत्पादों को तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन एवं ब्रिटेन के प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर के लगातार नैतिक समर्थन के बावजूद विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली देशों के समूह "जी-8" ने अपने एक सम्मेलन में प्रकृति के लिए एक बड़ा खतरा माना है और यह निर्णय लिया है कि जीन परिवर्तित कृषि उत्पादों से होने वाले दुष्प्रभावों की विश्वव्यापी जाँच की जाय।

भारतीय परिदृश्य में जीन परिवर्तित खाद्य :

यूरोपीय एवं पश्चिमी देशों में जीन परिवर्तित खाद्य-पदार्थों पर मची उथल-पुथल की छाया अब भारत पर भी पड़ने लगी है। भारतीय वैज्ञानिकों में यह बहस दिनों दिन उग्रतर होती जा रही है कि जीन परिवर्तित खाद्य-पदार्थों का देश के भीतर आयात और विकास होने दिया जाय या नहीं ? देश के जैव प्रौद्योगिकी विभाग के अनुसार अभी देश में किसी किस्म के जीन परिवर्तित अनाज एवं खाद्य-पदार्थ के आयात की अनुमति किसी को भी नहीं दी गयी है। लेकिन कई गैर-सरकारी संगठनों ने इस बात की आशंका व्यक्त की है कि चूंकि जीन परिवर्तित खाद्य-पदार्थों का उत्पादन करने वाले देशों में ही अभी इस प्रकार के खाद्य-पदार्थों या खाद्यान्न की न तो लेबलिंग की कोई व्यवस्था है और न ही देश में इस बारे में कोई कानून है। इसलिए यदि कोई जीन परिवर्तित खाद्य-पदार्थ देश में वैध या अवैध रूप से आ रहा है तो सरकारी स्तर पर उसकी रोकथाम और उसका पता लगाने की क्या व्यवस्था है ? वहीं दूसरी ओर देश में ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जो भारत जैसे अति विशाल जनसंख्या वाले देश में अगली शताब्दी की खाद्य चुनौतियों के मद्देनजर जीन परिवर्तित कृषि फसलों के विकास के वैज्ञानिक प्रयासों पर कोई अंकुश या नियंत्रण नहीं चाहते हैं। परंतु साथ ही इस मुद्दे से जुड़े जन-स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय सुरक्षा एवं संरक्षा के मसले पर पूरी सतर्कता बरतने की जरूरत पर भी बल देते हैं।

जीन परिवर्तित फसलों पर शोध कर रहे एक अन्य वैज्ञानिक के अनुसार देश में अभी कम से कम तीन वर्ष

तक इस प्रकार की फसलों के विकसित होने के आसार नहीं हैं और तब तक जन-स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय सुरक्षा संबंधी पर्याप्त कानूनों की व्यवस्था की जा सकती है। लेकिन ऐसी फसलों एवं खाद्य-पदार्थों के प्रति कुछ अधिक संवेदनशील वैज्ञानिकों का कहना है कि जनता के उपभोग के लिए इन फसलों के जारी करने या न करने की बात तो बाद की है, पहले इस बारे में पर्याप्त संख्या में प्रयोगशाला और फील्ड परीक्षणों का सवाल है और इन परीक्षणों के दौरान पर्याप्त सुरक्षा का सवाल है। इन वैज्ञानिकों के अनुसार जीन परिवर्तित फसलों के परीक्षणों के दौरान एंटीबायोटिक रेजिस्टेंट जीन्स का इस्तेमाल किया जाता है। यदि रेजिस्टेंट जीन्स असावधानीवश या अन्य किन्हीं कारणोंवश किसी तरह खाद्य श्रृंखला में पहुंच गयीं तो उस खाद्य का उपभोग करने वाली आबादी के एंटीबायोटिक प्रतिरोधी हो जाने का खतरा उत्पन्न हो सकता है। और यदि ऐसा हुआ तो इसका अर्थ यह होगा कि ऐसे लोगों पर एंटीबायोटिक औषधियों का कोई प्रभाव नहीं होगा। पश्चिमी देशों की तुलना में भारतीय कृषि के तौर-तरीके कुछ अलग हैं। भारत कृषि जोतें छोटी होने के कारण पश्चिमी देशों के विपरीत भारतीय कृषक अधिकांशत: मिलवां खेती (जैसे गेहूं के साथ सरसों, सरसों के साथ मटर, ज्वार, बाजरा और विशेषकर मक्का के साथ विभिन्न सब्जियों आदि की खेती) करता है। इन परिस्थितियों में मिलवां खेती की एक फसल यदि जीन परिवर्तित किस्म की हो तो साथ की दूसरी फसल पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, यह भी अज्ञात है।

देश में जीन परिवर्तित फसलों एवं कृषि उत्पादों का अभी चाहे विकास नहीं हुआ हो लेकिन इनसे संबंधित जो तथ्य सामने आ रहे हैं वे अति भयानक हैं। देश में जीन परिवर्तित कृषि उत्पादों का आना धड़ल्ले से जारी है। एक सूचना के अनुसार सस्ता होने के कारण सोयाबीन तेल के उत्पादन हेतु जीन परिवर्तित सोयाबीन एवं विभिन्न सॉफ्ट ड्रिंक्स एवं मदिरा के निर्माण हेतु जीन परिवर्तित मक्का से प्राप्त किये गये 'फ्रुक्टोज सिरप' का देश में आयात किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त जैविक रूप से परिष्कृत विभिन्न कृषि उत्पाद और खाद्य-पदार्थ देश में कभी उड़ीसा में गत् वर्ष आये भयंकर तुफान के बाद अमरीका द्वारा प्रदान की गयी खाद्यान्न और खाद्य सामग्री सहायता कार्यक्रम के नाम पर आये तो कभी भारतीय स्कूली बच्चों को स्कूलों में पोषाहार और भोजन सामग्री वितरण करने हेतु खाद्य सहायता कार्यक्रम के तहत आये। अमरीका द्वारा प्रदान की गयी इन खाद्य सहायता कार्यक्रमों में सामान्य खाद्यान्नों और खाद्य-पदार्थों के साथ-साथ जैविक रूप से परिष्कृत कृषि उत्पादों एवं खाद्य सामग्रियों के आने से देश की जनता जैविक रूप से परिष्कृत खाद्यान्नों एवं खाद्य-पदार्थों के परीक्षण के लिए गिनी-पिग बनी हुई है।

भविष्य की रणनीति :

जीन परिवर्तित फसलों एवं खाद्य-पदार्थों पर चूंकि अभी इसके उद्गम स्थल अमरीका में ही मतैक्य नहीं स्थापित हो सका है, ऐसी स्थिति में ऐसी फसलों के विकास एवं संवर्धन तथा इन फसलों के उत्पादों को खाद्य-पदार्थों के रूप में लाने से पूर्व संपूर्ण विश्व के वैज्ञानिक समुदाय द्वारा समवेत रूप से निम्न ज्वलंत मुद्दों पर गहन विचार-विमर्श करना समीचीन होगा -

1. जीन परिवर्तित फसलों के विकास एवं संवर्धन विषयक शोध कार्य निरंतर जारी रखे जायें परंतु इसी के समानांतर ऐसी किसी भी फसल या फसलोत्पाद से पर्यावरण या मनुष्यों में उत्पन्न हो सकने वाले संभावित खतरों के बारे में भी उसी स्तर का शोध कार्य जारी रखा जाये और भविष्य में ऐसे किसी भी कारण से उत्पन्न होने वाले संभावित खतरों से निपटने के लिए उसी स्तर के एक आपातकालीन सहायता कोष की भी स्थापना की जाये।
2. ऐसी फसलों के व्यर्थ उत्पादों यथा, पत्तियां, डंठल, जड़ एवं फल-फूल आदि के व्यर्थ भागों का पर्यावरण पर क्या प्रभाव होगा ?
3. इन फसलों का मनुष्यों के अतिरिक्त पर्यावरण के अन्य जीव-जंतुओं, कीड़े-मकोड़ों, सूक्ष्म जीवों, साथ की अन्य फसलों एवं खर-पतवारों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका विशद अध्ययन हो।
4. जीन परिवर्तित फसलों का आस-पास की वनस्पतियों पर क्या एलीलोपैथिक प्रभाव होगा तथा मृदा की

संरचना पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

5. बहुत सी फसलों यथा ज्वर, बाजरा, मक्का, उड़द, गेहूं तथा धान की फसलों से अनाज प्राप्त कर लेने के बाद व्यर्थ भाग का उपयोग पशुओं के चारे के रूप में किया जाता है । अतः पशुओं एवं उनसे प्राप्त होने वाले उत्पादों पर ऐसी फसलों का क्या प्रभाव होगा ?
6. जीन परिवर्तित औषधीय फसलों से प्राप्त होनेवाली औषधियों के गुण-धर्म पर जीन परिवर्तन का क्या प्रभाव होगा ?

अनेक स्तरीय प्रयोगशाला परीक्षण, फिर प्रयोगशालायी जंतुओं पर परीक्षण, तदोपरांत मानव स्वयं सेवकों पर परीक्षणों को लंबी प्रकिया से गुजरने के बाद किसी नयी औषधि को बाजार में आने में लगभग 15 वर्षों का समय लग जाता है । जब औषधि के विकास हेतु इतनी दुरूह प्रकिया अपनाये जाने का वैश्विक स्तर पर ऐसी ही कोई प्रकिया क्यों नहीं अपनायी जा रही है ?

जीन परिवर्तित फसलों एवं उनके खाद्य-पदार्थों के उपभोग के पूर्व परीक्षणों एवं उपभोग के बाद के संभावित प्रभावों के अध्ययन के लिए विश्व के किसी भी देश में अभी तक किसी मानक प्रकिया का निर्धारण नहीं किया जा सका है । विश्व के किसी भी देश में अभी तक जीन परिवर्तित फसलों एवं खाद्य-पदार्थों के लेबलिंग, नियमन, आयात एवं निर्यात उपयोग हेतु सावधानियों (यदि कोई हों तो), उनसे हो सकने वाले संभावित दुष्प्रभावों को रोकने और इन सबको नियंत्रण करने हेतु कोई भी कानून अभी तक नहीं बन सके हैं । इसे सुनिश्चित करने के लिए वैश्विक स्तर पर प्रकिया आरंभ की जानी चाहिए ।

जीन परिवर्तित फसलों के विकास में लगे सभी देशों के आंकड़े एक-दूसरे के लिए सुगमता से उपलब्ध हों जिससे उनकी सत्यता एवं विश्वसनीयता के बारे में कहीं कोई भ्रम न उत्पन्न हो सके ।

जब तक ऐसे सभी मसलों पर सभी देश एकमत न हो जायें और जीन परिवर्तित फसलें एवं खाद्य-पदार्थ सभी प्रकार से सुरक्षित घोषित न हो जायें, तब तक विश्व के किसी भी कोने में उनका व्यवसायिक उपयोग न किया जाये और उनको प्रतिबंधित रखा जाये, क्योंकि यदि एक बार कोई भी जीन कहीं भी, किसी भी अवांछित पौधे में समाविष्ट हो गयी तो उसका नियंत्रण कठिन ही नहीं अपितु असंभव भी हो सकता है । विश्व के समस्त वैज्ञानिक समुदाय की पहली प्राथमिकता मानव समाज एवं पर्यावरण की सुरक्षा होनी चाहिए न कि येन-केन-प्रकारेण लाभ अर्जित करना ।

❑❑❑

'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं । परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार ली गयी है ।

- संपादक

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2000) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

न्यूट्रॉन ट्रैप

आसावरी मराठे
लेसर एवं प्लाज्मा तकनीकी प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई - 400 085

नाभिक के अंदर मुक्त एवं पृथक हुए न्यूट्रॉनों की स्थिरता समाप्त हो जाती है, और कुछ ही समय में प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन तथा एंटीन्यूट्रिनो के रूप में उनका क्षय हो जाता है। न्यूट्रॉन का क्षय-काल मापने के विभिन्न तरीके हैं। 'न्यूट्रॉन ट्रैप' विधि द्वारा क्षयकाल का मापन अतिशुद्धता से किया जा सकता है। इसके विविध मापदंड हैं। न्यूट्रॉन ट्रैप के प्रयोग से न्यूट्रॉन क्षय की परिशुद्धता से माप ब्रह्मांड की उत्पत्ति के समय की परमाणु निर्माण प्रक्रिया को समझने में सहायक सिद्ध हो सकती है। इसके अतिरिक्त कण-भौतिकी में इसके अन्य अनुप्रयोग भी हैं। प्रस्तुत लेख में न्यूट्रॉन-ट्रैप का विस्तृत विवरण दिया गया है।

न्यूट्रॉन कण, द्रव्य के आधारभूत घटक हैं। न्यूट्रॉनों के विषय में अधिक ज्ञान ग्रहण कर हम परमाण्वीय स्तर तथा खगोलीय स्तर पर अपने ज्ञान की सीमाएँ बढ़ा सकते हैं। न्यूट्रॉन कणों का अध्ययन दुर्बल नाभिकीय बल को समझने में तथा समता-उल्लंघन (Parity violation) संबंधी प्रयोगों में कण-भौतिक विज्ञानी के लिए जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही महत्वपूर्ण खगोल-भौतिक विज्ञानियों के लिए भी है, जो न्यूट्रॉन तारे तथा विश्व की उत्पति के रहस्य को सुलझाना चाहते हैं।

प्रोटॉन, न्यूट्रॉन तथा इलेक्ट्रॉन कण परमाणु के मूल घटक हैं। प्रोट्रॉन तथा न्यूट्रॉन एक दूसरे के साथ आबंधित अवस्था में परमाणु केंद्र (नाभिक) अर्थात न्यूक्लियस में रहते हैं। इलेक्ट्रॉन इस न्यूक्लियस के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। जब न्यूट्रॉन न्यूक्लियस में प्रोटॉनों के साथ बद्ध रूप में रहते हैं, तब वे स्थिर होते हैं। किंतु जब वे मुक्त तथा पृथक अवस्था में रहते हैं, तब यह स्थिरता समाप्त होकर कुछ समय बाद उनका प्रोट्रॉन, इलेक्ट्रॉन व एंटीन्यूट्रिनो में क्षय हो जाता है। न्यूट्रॉन का क्षय-काल / जीवन-काल मापने हेतु अब तक विभिन्न तरीके अपनाये गये। इन प्रयोगों पर आधारित न्यूट्रॉन का जीवन काल 14 मिनट व 47 सेकंड है। इस मान में $\pm$ 2 सेकंड की अनिश्चितता है। न्यूट्रॉन के जीवन काल का मान दुर्बल नाभिकीय बल के स्पष्टीकरण में तथा 'बिग बैंग' के समय द्रव्य का निर्माण कैसे हुआ, समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसी कारण यह मान अधिकतम परिशुध्दता (Precision) के साथ निश्चित करना बहुत महत्वपूर्ण है। न्यूट्रॉन ट्रैप का उपयोग कर यह साध्य किया जा सकता है। न्यूट्रॉन ट्रैप में मुक्त न्यूट्रॉनों को सीमित अवकाश में कुछ समय के लिए बद्ध किया जा सकता है तथा उनके क्षय-प्रक्रम का निरीक्षण किया जा सकता है।

यद्यपि न्यूट्रॉनों को ट्रैप करने का प्रस्ताव रूसी वैज्ञानिक ब्लदिमिर्स्की द्वारा 1961 में ही रखा गया था, इस कल्पना को वास्तव में साकार करना 1999-2000 में ही संभव हुआ। दिसंबर 1999 में चुंबकीय ट्रैप का प्रयोग कर अमरीका तथा जर्मनी के वैज्ञानिकों ने संयुक्त रूप से पहली बार न्यूट्रॉनों को ट्रैप करने में सफलता प्राप्त की। उनके प्रयोग में ट्रैप का सारा अवकाश अति-तरल

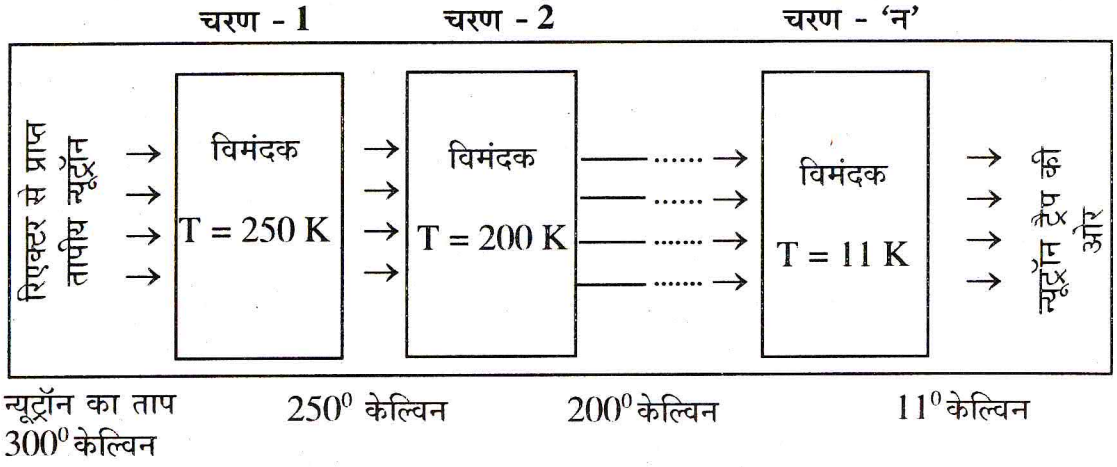

चित्र-1 : रिएक्टर से प्राप्त न्यूट्रॉनों का विमंदकों द्वारा विभिन्न चरणों में 11^0K ताप तक शीतलन

(Super fluid) हीलियम से भरा था, जिसमें अति शीत न्यूट्रॉन उद्भारित (load) किये गये । उनके प्रयोग में मापा गया न्यूट्रॉन का जीवन काल 750 (+300 से -200 तक) सेकंड है । इस मापन पद्धति में तथा तकनीक में अभी बहुत ही अनिश्चितता है । परंतु यह अनिश्चितता 10^{-3} % तक कम की जा सकती है, यह इन वैज्ञानिकों का दावा है ।

न्यूट्रॉन ट्रैप के विविध प्रतिरूपक (modules):

न्यूट्रॉन कणों को ट्रैप में बद्ध करने हेतु उनकी गतिज ऊर्जा को घटाकर उनका ताप कम करना आवश्यक है । इस हेतु उनकी गति तथा स्थिति पर नियंत्रण रखना जरूरी है । पिछले दो दशकों में अनावेशित (neutral) परमाणुओं के परिचालन (manipulation) व उनकी गति तथा स्थिति पर नियंत्रण हेतु अनेक तरीके अपनाये गये, जैसे कि लेसर किरणों द्वारा शीतलन । किंतु न्यूट्रॉनों पर नियंत्रण हेतु लेसर किरणों का प्रयोग नहीं किया जा सकता । परमाणु / अणुओं के शीतलन में अपनाये गये बहुतांश तकनीक न्यूट्रॉनों को ट्रैप करने के लिए अपनाये नहीं जा सकते । तथापि चुंबकीय-स्थैतिक (magneto-static) ट्रैप द्वारा यह संभव हो सकता है ।

न्यूट्रॉन ट्रैप के निर्माण में निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रतिरूपक हैं :

- ◆ न्यूट्रॉन-स्रोत ।
- ◆ न्यूट्रॉनों को निर्वात में बद्ध करने हेतु चुंबकीय क्षेत्र ।
- ◆ ट्रैप-उद्भारण क्रियाविधि ।

न्यूट्रॉन स्रोत :

न्यूट्रॉन ट्रैप के निर्माण में सर्वप्रथम आवश्यकता है न्यूट्रॉनों के स्रोत की । नाभिकीय उत्खंडन (spallation) तकनीक तथा रिएक्टर आदि से भारी संख्या में न्यूट्रॉन उपलब्ध होते हैं । भा. प. अ. केंद्र में स्थित अनुसंधान रिएक्टर को न्यूट्रॉन ट्रैप के स्रोत के रूप में देखा जा सकता है, जहां अन्य प्रयोगों के लिए न्यूट्रॉन किरण-पुंज उपलब्ध हैं । यह रिएक्टर दाबित-भारी जल प्रकार का है, तथा इसमें से उपलब्ध होने वाले न्यूट्रॉनों का ताप सामान्य ताप जितना होता है । उन्हें न्यूट्रॉन ट्रैप में बद्ध करने हेतु उनका ताप अर्थात उनकी गतिज ऊर्जा घटाना बहुत आवश्यक है । इस हेतु विमंदक का उपयोग किया जाता है । अधिक ऊर्जा-युक्त न्यूट्रॉन जब विमंदक के परमाणु / अणुओं से जिनका ताप / गतिज ऊर्जा न्यूट्रॉनों के सापेक्ष कम होती है - टकराते हैं, तब अपनी अतिरिक्त ऊर्जा वे विमंदक को देते हैं । इस प्रक्रिया में न्यूट्रॉन कणों की ऊर्जा घटती है तथा विमंदक की ऊर्जा बढ़ जाती है । यह प्रक्रिया इसी तरह चलती रहे, इस हेतु विमंदक का ताप / ऊर्जा (गतिज) नियंत्रित रखना बहुत जरूरी है, जो 'शीतलक' द्वारा किया जाता है । विमंदक के परमाणु / अणु न्यूट्रॉन शीतलन प्रक्रिया में जो ऊर्जा प्राप्त करते हैं, 'शीतलक'

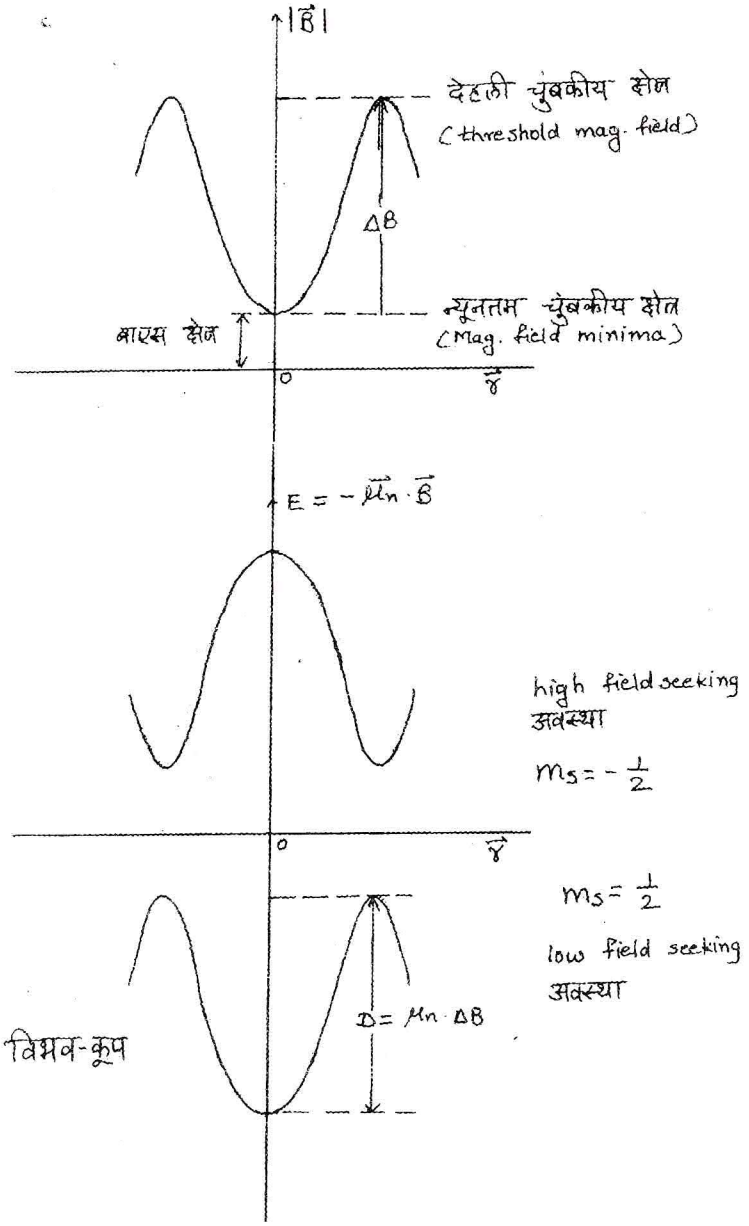

चित्र-2 : $m_s = \pm 1/2$ अवस्था युक्त न्यूट्रॉन की चुंबकीय क्षेत्र में अन्योन्यक्रिया ऊर्जा

द्वारा उसका अवशोषण होता है। इस प्रकार विमंदक का ताप न्यूट्रॉन कणों के ताप से कम पर नियंत्रण किया जाता है। इस प्रक्रिया से न्यूट्रॉनों का ताप सामान्य ताप से (~300^{0}K) 11^{0}K तक घटाया जाता है। यह क्रिया अनेक चरणों में की जाती है। यह (चित्र-1) में अधिक स्पष्ट रूप में यह दिखाया गया है। हर चरण में न्यूट्रॉनों का ताप पहले से और घटाया जाता है, तथा अंत में 11^0 K ताप के न्यूट्रॉन प्राप्त किये जाते हैं, जो ट्रैप में उद्भारण करने योग्य होते हैं। 11^{0}K यही मान क्यों ? इस प्रश्न का उत्तर उद्भारण क्रियाविधि के अंतर्गत विस्तार से दिया

गया है।

चुंबकीय ट्रैप :

जैसा कि नाम से ही हमें बोध है कि न्यूट्रॉन अनावेशित कण हैं। प्रोटॉन तथा इलेक्ट्रॉन आवेशित कण होने के कारण विद्युत बल से नियंत्रित किये जा सकते हैं। किंतु न्यूट्रॉन पर विद्युत बल का कोई प्रभाव नहीं होता है। बहुत से पदार्थ उन्हें बड़ी मात्रा में अवशोषित करते हैं। इस कारण उन्हें पदार्थ से बने हुए जाल में भी बद्ध नहीं किया जा सकता।

तथापि चुंबकीय क्षेत्र का उपयोग कर उन्हें ट्रैप किया जा सकता है। न्यूट्रॉन के शून्येतर चुंबकीय आघूर्ण (nonzero magnetic moment) के कारण यह संभव हो सकता है। न्यूट्रॉन का चुंबकीय आघूर्ण $\mu_n = 0.7$ mk / tesla होता है। चुंबकीय क्षेत्र के साथ चुंबकीय आघूर्ण की अन्योन्यक्रिया ऊर्जा (interaction energy) $E = -\mu_n.B$ इस सूत्र से पायी जाती है। यह ऊर्जा जितनी कम हो, वह अवस्था उतनी स्थिर होती है। न्यूट्रॉन का आभ्राम (Spin) जब चुंबकीय क्षेत्र की समांतर दिशा में होता है, (m_s स्पिन $= +1/2$; $\mu_n \propto -m_s$) तथा न्यूट्रॉन का चुंबकीय आघूर्ण जब चुंबकीय क्षेत्र की विरुद्ध दिशा में होता है, तब E का मान ऋण होता है। इसी कारण यह अवस्था स्थिर अवस्था है। $m_s = 1/2$, इस न्यूट्रॉन के विन्यासन (orientation) को 'low field seeking' अवस्था कहते हैं। $m_s = -1/2$ वाले स्पिन युक्त न्यूट्रॉन धन विभव-ऊर्जा युक्त होते हैं। तथा वे स्थिर अवस्था में नहीं होते। इस ($m_s = -1/2$) अवस्था को 'high field seeking' अवस्था कहते हैं।

यदि स्थानानुसार बदलने वाला चुंबकीय क्षेत्र निर्माण किया जाये, जो किसी एक स्थान पर न्यूनतम मान ग्रहण करता हो, तो 'low field seeking' अवस्था-प्राप्त न्यूट्रॉन इस क्षेत्र से अन्योन्यक्रिया के कारण विभव कूप (potential well) का अनुभव करते हैं। चित्र 2 में $m_s = 1/2$ तथा $m_s = -1/2$ अवस्था प्राप्त न्यूट्रॉन किस प्रकार के विभव का अनुभव करते हैं, यह दर्शाया गया है। इस विभव-कूप की गहराई $D = \mu_n.\triangle B$ सूत्र से प्राप्त होती है। इसमें $\triangle B$ यह देहली (thres hold) चुंबकीय क्षेत्र व न्यूनतम चुंबकीय क्षेत्र के बीच का अंतर दर्शाता है जो न्यूट्रॉन विभव-कूप का अनुभव करने योग्य अवस्था में ($m_s = 1/2$) होते हैं, तथा जिनकी ऊर्जा ट्रैप डेप्थ से कम होती है, वे न्यूट्रॉन ट्रैप के निर्वात में सीमित हो जाते हैं।

यदि ट्रैप का न्यूनतम चुंबकीय क्षेत्र शून्य है, तो ट्रैप से उस स्थान से न्यूट्रॉन बाहर आ सकते हैं। चुंबकीय क्षेत्र के अभाव में न्यूट्रॉन की $m_s = 1/2$ व $m_s = -1/2$ ये दोनों अवस्थाएं एक जैसी होती हैं। उन्हें अपभ्रष्ट अवस्थाएं (degenerate states) कहते हैं। न्यूट्रॉन की विभव ऊर्जा इनमें से किसी भी अवस्था में समान होती है। किंतु चुंबकीय क्षेत्र के कारण यह अपभ्रष्टता दूर हो जाती है, तथा केवल $m_s = 1/2$ स्पिन युक्त न्यूट्रॉन ट्रैप में बद्ध रहते हैं। जब यह न्यूट्रॉन ट्रैप में भ्रमण करते समय ट्रैप के न्यूनतम स्थान पर पहुंचते हैं, जहां शून्य चुंबकीय क्षेत्र है, तब उस स्थान पर $m_s = 1/2$ व $m_s = -1/2$ इन दोनों अवस्थाओं में कोई अंतर न होने के कारण वे अपनी अवस्था बदलकर $m_s = -1/2$ इस स्पिन अवस्था में संक्रमण कर सकते हैं। इस घटना को 'माजोराना स्पिन फ्लिप संक्रमण' कहते हैं। $m_s = -1/2$ स्पिनयुक्त न्यूट्रॉन बद्ध करनेवाले विभव (trapping potential) के अभाव के कारण ट्रैप से बाहर निकल जाते हैं। ट्रैप में से इस प्रकार से न्यूट्रॉन कणों की हानि रोकने हेतु ऐसे चुंबकीय क्षेत्र संरूपण का उपयोग किया जाता है, जिसमें हर स्थान पर (ट्रैप-अवकाश में) चुंबकीय क्षेत्र शून्येतर हो। उदाहरण के तौर पर आयोफे-प्रिटचार्ड संरूपण तथा कलोवर-लीफ ट्रैप संरूपण, इत्यादि।

चित्र-3 में आयोफे-प्रिटचार्ड संरूपण दिखाया गया है। इस संरूपण में दो एक समान तथा एक-अक्षीय कुंडलियाँ जो एक ही दिशा में विद्युत धारा का वहन करती हैं, 'चुंबकीय संरोधिका' (magnetic bottle) प्रकार के क्षेत्र का निर्माण करती हैं। इन कुंडलियों से उनके अक्ष की दिशा में परिरोध (confinement) प्राप्त होता है। अक्ष की लंब दिशा में परिरोध प्राप्त करने हेतु चार सरल वाहक तारों का उपयोग किया जाता है। ये तार एकांतर दिशा में विद्युत धारा का वहन करते हैं। इस संरूपण से प्राप्त होनेवाले चुंबकीय क्षेत्र के अनुकार

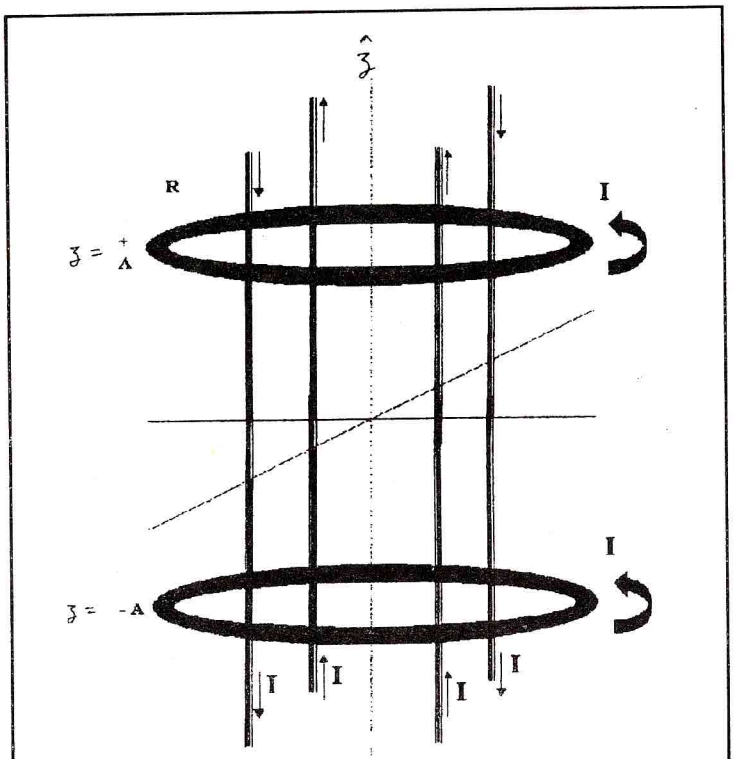

चित्र-3 : आयोफे-प्रिटचार्ड संरुपण

(simulations) चित्र-4 में दर्शाये गये हैं । अक्षीय दिशा में चुंबकीय क्षेत्र का मान z^2 के समानुपाती होता है । ट्रैप के केंद्र में यह क्षेत्र न्यूनतम होता है । ट्रैप में हर स्थान पर क्षेत्र शून्येतर मान धारण करता है । ट्रैप के न्यूनतम क्षेत्र को 'बायस क्षेत्र' (bias field) कहते हैं । इस क्षेत्र पर नियंत्रण हेतु आयोफे-प्रिटचार्ड संरूपण के साथ हेल्महोल्ट्ज कुंडलियों की एक जोड़ी ट्रैप में समाविष्ट की जा सकती है । हेल्महोल्ट्ज संरूपण में दो एक समान, एक अक्षीय कुंडलियाँ एक ही दिशा में विद्युत धारा का संवहन करती हैं । उनकी त्रिज्या तथा उनके बीच का अंतर इस प्रकार निश्चित किया जाता है, कि उनके कारण ट्रैप में हर स्थान पर एक ही मान का क्षेत्र प्राप्त होता है । यह क्षेत्र अक्षीय दिशा में होता है तथा 'बायस' कुंडलियों में बहने वाली विद्युत धारा पर निर्भर करता है । इस विद्युत धारा का नियंत्रण कर 'बायस' क्षेत्र का नियंत्रण किया जा सकता है ।

न्यूट्रॉन का चुंबकीय आघूर्ण $\mu_n = 0.7$ mk / tesla होने के कारण, 1 mk ऊर्जायुक्त न्यूट्रॉन को पाश में बद्ध करने हेतु 1.4 टेस्ला जितनी प्रभावी ट्रैप-डेप्थ आवश्यक होती है । इतने तीव्र चुंबकीय क्षेत्र का निर्माण अतिचालक कुंडलियाँ तथा वाहक तारों को प्रयोग किये बिना असंभव है ।

ट्रैप-उद्भारण क्रियाविधि :

ट्रैप-निर्वात को न्यूट्रॉनों से भरने की विधि (loading) बहुत ही कठिन है । न्यूट्रॉन कण जब ट्रैप निर्वात में प्रवेश करते हैं, तब उनका ताप 11^0K के बराबर होता है । उन्हें ट्रैप के संरक्षी क्षेत्र (conservative field) में सफलतापूर्वक पाश-बद्ध करने के लिए उनकी ऊर्जा घटाकर (ट्रैप निर्वात में घटाकर) पाशविभव (trapping potential) से कम करना जरूरी है । परमाणु तथा अणुओं को ट्रैप में भरते समय निम्नतापी पृष्ठ का उपयोग किया जा सकता है, जिससे प्रकीर्णन (scattering) के बाद उनकी

ऊर्जा घटती है । शीत पृष्ठभूमि गैस (cold back-ground gases) अथवा लेसर शीतलन तकनीक द्वारा भी यह काम किया जा सकता है । तथापि न्यूट्रॉन व फोटॉन में परस्पर क्रिया संभव नहीं है । न्यूट्रॉन पृष्ठभूमि गैस के साथ भी बहुत क्षीण अन्योन्यक्रिया करते हैं । उनकी ऊर्जा निम्नतापी पृष्ठ के माध्यम से घटाना भी असंभव है क्योंकि आमतौर पर सारे पदार्थ न्यूट्रॉनों का अवशोषण करते हैं । इसीलिए इस क्रियाविधि में ऐसे पदार्थ की आवश्यकता है, जिसका न्यूट्रॉन अवशोषण अनुप्रस्थ काट (क्रॉस-सेक्शन) बहुत कम हो, तथा न्यूट्रॉन के साथ इस पदार्थ की प्रभावी अन्योन्यक्रिया हो ।

इस समस्या को 'सुपर थर्मल प्रक्रिया' द्वारा हल किया जा सकता है । द्रवित हीलियम के परमाणु अतिशीत अवस्था में बहुत ही आश्चर्यजनक गुणधर्म दिखाते हैं । द्रव की इस अवस्था को 'अतितरलता' कहते हैं । इस अवस्था में हीलियम के सारे परमाणु अपना अलग-अलग अस्तित्व भूल कर एक क्वांटम प्रणाली के समान व्यवहार करते हैं । इसी कारण उनकी ऊर्जा का विविक्तीकरण (discretization) हो जाता है । न्यूट्रॉन का विक्षेपण वक्र (dispersion curve) व अतितरल हीलियम के प्राथमिक उत्तेजनों का (elementary excitations) विक्षेपण वक्र एक दूसरे को 0.95 meV या 11^0K की ऊर्जा मान पर छेदते हैं । अर्थात इस ऊर्जा के न्यूट्रॉन व अतितरल हीलियम में अन्योन्यक्रिया तथा ऊर्जा का स्थानांतरण संभव हो सकता है । जिन न्यूट्रॉन कणों की ऊर्जा लगभग 11^0K होती है, वे अतितरल हीलियम के परमाणुओं के साथ प्रकीर्णन क्रिया में अपनी लगभग सारी ऊर्जा फोनॉन के रूप में खो देते हैं । इससे उनकी ऊर्जा बहुत ही कम हो जाती है । इनमें जिन न्यूट्रॉनों की ऊर्जा ट्रैप के पाश-विभव से कम है, तथा उनका आभ्राम चुंबकीय क्षेत्र की समांतर दिशा में है, वे न्यूट्रॉन ट्रैप में बद्ध हो जाते हैं । अतितरल हीलियम में 11^0K के फोनॉन बहुत ही कम संख्या में होने के कारण, पाश-बद्ध न्यूट्रॉन के एक-फोनॉन द्वारा ऊर्ध्व-प्रकीर्णन की संभावना बहुत कम होती है । एक से अधिक फोनॉनों के अवशोषण द्वारा न्यूट्रॉन के ऊर्ध्व-प्रकीर्णन को कम करने हेतु हीलियम का ताप 250 mK पर नियंत्रित किया जाता है । इस प्रक्रिया की प्रायिकता (संभावना) ताप के सातवें घात (T^7) से समानुपातिक होती है । T=250 mK के ताप के लिए न्यूट्रॉनों के ऊर्ध्व-प्रकीर्णन की दर 10^{-6} प्रति सेकंड प्रति न्यूट्रॉन से भी कम होती है । इस तकनीक का उपयोग कर ऊर्ध्व-प्रकीर्णन द्वारा न्यूट्रॉन की हानि पर रोक लगायी जा सकती है । 'सुपर थर्मल प्रक्रिया' तकनीक के कारण ट्रैप में बद्ध अतिशीत न्यूट्रॉन अपने आसपास के अधिक तापयुक्त हीलियम परमाणुओं के साथ तापीय असंतुलन (thermal inequilibrium) में बहुत समय तक - उनके जीवन काल से भी अधिक समय तक रह सकते हैं ।

इस तकनीक से ट्रैप कुछ समय तक न्यूट्रॉन कणों से उद्भारित किया जाता है । इसके बाद ट्रैप में प्रवेश करनेवाले न्यूट्रॉनों की बीम रोक दी जाती है तथा उनके क्षय की प्रक्रिया का निरीक्षण किया जाता है ।

संसूचन / अभिज्ञापन :

ट्रैप में बद्ध न्यूट्रॉनों का प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन व एंटी-न्यूट्रीनो में क्षय होता है ।

$$n^0 \rightarrow p^+ + e^- + \nu_e$$

इसमें जो ऊर्जा मुक्त होती है, वह अधिकांशतः इलेक्ट्रॉन व एंटीन्यूट्रिनो में बंटी होती है (~782 KeV) । जब यह अधिक ऊर्जायुक्त इलेक्ट्रॉन द्रव हीलियम में मार्गक्रमण करते हैं, तब वे अपने पथ में आनेवाले हीलियम परमाणुओं को आयनित करते हैं । ये हीलियम आयन तुरंत दूसरे परमाणुओं के साथ एक्साईमर द्वि-परमाण्वीय अणु का निर्माण करते हैं । इनमें से लगभग 50 प्रतिशत अणु सिंगलेट (singlet) अवस्था में व बाकी के ट्रिपलेट अवस्था में होते हैं । सिंगलेट अवस्थायुक्त अणु अंदाजन 10 नैनोसेकंड की कालावधि में क्षय होकर अति परा बैंगनी (extreme ultraviolet) फोटॉन का उत्सर्जन करते हैं (λ ~70-90 नैनोमीटर) । इसी प्रकीर्णित फोटॉन का अभिज्ञापन करके हमें न्यूट्रॉन-क्षय का ज्ञान हो सकता है । ट्रिपलेट अवस्था के अणुओं का क्षय-काल कुछ सेकंड (~13 से.) होने के कारण सिंगलेट व ट्रिपलेट अवस्था में रहनेवाले अणुओं से अलग-अलग समय पर

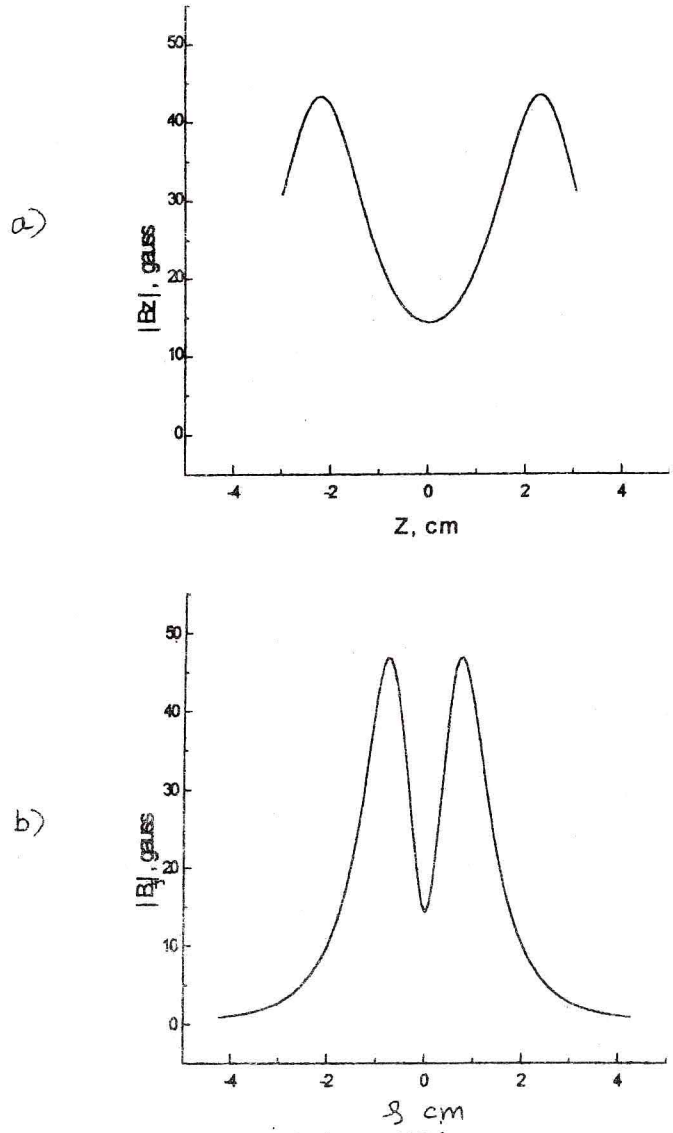

चित्र-4 : आयोफे-प्रिटचार्ड संस्रण के लिए अनुकारित चुंबकीय क्षेत्र
a) अक्षीय दिशा में b) (X-Y) : अरीय दिशा में

न्यूट्रॉन क्षय का संकेत मिलता है।

एक क्षय प्रक्रिया से निर्मित फोटॉन लगभग 15 हीलियम परमाणुओं को आयनित करता है। इस कारण एक न्यूट्रॉन के क्षय के संकेत के रूप में हम लगभग 7-8 फोटॉनों की अपेक्षा कर सकते हैं। अति पराबैंगनी प्रकीर्णित प्रकाश की तंरगदैर्घ्य परिवर्तित करके दृश्य क्षेत्र में ले आयी जाती है ताकि न्यूट्रॉन-क्षय का संसूचन मात्र आंख से भी किया जा सके। ट्रैप का अंत:पृष्ठ एक विशेष पॉलीस्टेरीन से विलेपित किया जाता है, जिसमें TBP 'डाई' का अंश रहता है। इस डाई के अणु 70-90 नैनोमीटर ऊर्जायुक्त फोटॉनों का अवशोषण कर नीले रंग के फोटॉन उत्सर्जित करते हैं। इस नीले प्रकाश का कुछ

अंश ट्रैप की विंडो से बाहर आता है, तथा प्रकाशीय वेव गाईड का उपयोग कर इस संकेत को फोटो-मल्टीप्लायर ट्यूब तक पहुंचाया जाता है, जिससे संकेत का संसूचन होता है। यह ट्यूब सामान्य ताप पर ही काम करती है।

यहां TBP डाई का प्रयोग कर पराबैंगनी संकेत को नीले रंग के प्रकाश संकेत में बदलना अति आवश्यक है। इसके दो प्रमुख कारण हैं :

1. अति पराबैंगनी फोटॉनों के संसूचक 250 mK ताप में तथा न्यूट्रॉनों की उपस्थिति में काम नहीं कर सकते।
2. अति पराबैंगनी फोटॉनों का फोटो मल्टीप्लायर ट्यूब या संसूचक तक वहन करने के लिए योग्य पदार्थ की अनुपलब्धि।

न्यूट्रॉन ट्रैप में से न्यूट्रॉन कणों की हानि :

ऐसी बहुत सी प्रक्रियाएं हैं, जिनके कारण ट्रैप में बद्ध न्यूट्रॉन उससे बाहर निकल जाते हैं। ट्रैप के निर्वात में जो अतितरल परमाणु होते हैं, उनमें ^4He आइसोटोप के साथ ^3He आइसोटोप भी हो सकता है। ^4He परमाणु न्यूट्रॉनों का अवशोषण नहीं करते। किंतु ^3He परमाणुओं का न्यूट्रॉन अवशोषण क्रॉस-सेक्शन $\sigma = 5.3 \times 10^{-24}\ cm^2$ होता है। यदि ट्रैप में ^3He परमाणु उपस्थित हैं, तो वे पाश-बद्ध न्यूट्रॉनों का अवशोषण कर ट्रैप में उनकी संख्या घटाते हैं। इस प्रकार से हो रही न्यूट्रॉनों की हानि कम करने हेतु ट्रैप में आइसोटोपिकली अतिशुद्ध हीलियम ^4He का उपयोग किया जाता है, जिसमें ^3He की संख्या $10^{-10}\%$ से भी कम रहती है।

ट्रैप में न्यूनतम चुंबकीय क्षेत्र यदि शून्य हो, तो जैसे कि पहले स्पष्ट किया गया है, 'माजोराना स्पिन फ्लिप संक्रमण' के कारण न्यूट्रॉन ट्रैप से बाहर आ जाते हैं। इस पर उपाय के तौर पर शून्येतर चुंबकीय क्षेत्र का निर्माण करनेवाले संरूपण - जैसे कि आयोफे-प्रिटचार्ड संरूपण का उपयोग किया जा सकता है।

न्यूट्रॉन-जीवन काल की मापन-पद्धतियों में न्यूट्रॉन-ट्रैप का महत्व :

न्यूट्रॉन के जीवन काल का मापन करने हेतु विविध पद्धतियाँ अपनायी गयी हैं।

अभी तक अपनायी गयी सबसे परिशुद्ध पद्धति में अतिशीत न्यूट्रॉनों को एक विशेष पदार्थ से बने 'बॉटल' में रोधित किया जाता है। इस पदार्थ में न्यूट्रॉन को परावर्तित करने की अतिउच्च क्षमता होती है। इस पद्धति में ट्रैप की दीवारों के साथ न्यूट्रॉन की अन्योन्यक्रिया होने के कारण हानि हो सकती है।

चुंबकीय संग्रह वलय (magnetic storage ring) में न्यूट्रॉन कणों का संचय कर उनके क्षय काल का मापन करते हैं। तथापि संग्रह वलय में चुंबकीय क्षेत्र द्वारा रोधन केवल दो मितियों में संभव होता है। तीसरी मिती में रोधन के अभाव के कारण, betatron oscillations पद्धति में भी न्यूट्रॉनों की हानि की दर अधिक होती है।

चुंबकीय ट्रैप में दीवारों के कारण न्यूट्रॉन-हानि नहीं होती है, क्योंकि ट्रैप की देहली-सीमा चुंबकीय क्षेत्र से निश्चित होती है, न कि उसकी दीवारों से। इस पद्धति में बीटाट्रॉन ऑसिलेशनों का भी अभाव रहता है। इसी कारण ट्रैप में न्यूट्रॉनों की क्षति अधिकतः उनके β (बीटा) क्षय के कारण होती है। इससे उनके क्षय-काल के मापन में शुद्धता और बढ़ती है।

अनुप्रयोग :

कण भौतिक वैज्ञानिक पदार्थ के मूल कणों की आपस में होनेवाली अन्योन्यक्रिया स्पष्ट करने हेतु जिस 'स्टैंडर्ड मॉडेल' को मानते हैं, उसके अनुसार प्राथमिक स्तर पर बल के केवल चार प्रकार होते हैं। उनमें से एक है दुर्बल नाभिकीय बल। यही बल रेडियो सक्रियता जैसी घटना का कारण होता है। उदाहरण के तौर पर मुक्त न्यूट्रॉन का क्षय। इस क्रिया का अध्ययन हमें क्षीण नाभिकीय बल को समझने में एक नयी दृष्टि दे सकता है।

हमारे विश्व की उत्पत्ति के समय जब विश्व की आयु केवल एक सेकंड थी, तब विश्व की ऊर्जा बहुत सीमित अवकाश में फोटॉन / प्रकाश व द्रव्य-कणों में बंटी हुई थी। द्रव्य ऊर्जा प्रोटॉन व न्यूट्रॉन के रूप में थी। तीव्र नाभिकीय बल के कारण प्रोटॉन व न्यूट्रॉन एक दूसरे के साथ बद्ध होकर परमाणु-केंद्र न्यूक्लियस का निर्माण

(शेष भाग कृपया पृष्ठ 57 पर देखें...)

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2000) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

मानव-मस्तिष्क : एक स्वनियंत्रित कंप्यूटर

कु. मीता चटर्जी, रिसर्च स्कॉलर
एवं कु. गीता चटर्जी-फैलो, आई सी एस एस आर,
द्वारा - श्री प्रकाश चटर्जी, 'रेबा निवास' 68/138, नेहरू मार्ग,
आशुतोष नगर, ऋषिकेश - 249 201 (उत्तरांचल)

इस नयी सहस्त्राब्दि के आधुनिक जगत में "मानव" एक ऐतिहासिक परिचयात्मक शब्द है, जिसका स्पष्टीकरण करना, विशेषकर आज के इस अत्याधुनिक युग में निरर्थक है। आज का एक छोटा बालक भी यह जानता है कि, उसकी पहचान क्या है एवं वह कितना शक्तिमान है। प्रारंभ में मानव अत्यंत कठोर परिश्रमी था; परंतु आज उसने अपनी श्रमसीमा को कम करने के लिए बहुतायत में यांत्रिक साधनों का आविष्कार किया है। इन सभी खोजों व आविष्कारों में सक्रिय योगदान उसके शरीर का वह भाग करता है, जिसे हम "मस्तिष्क" के नाम से जानते हैं एवं जो वास्तव में उसके शरीर का चालक व अध्यापक भी है। मात्र इतना ही नहीं, यदि हम "मानव-मस्तिष्क" को आज का सर्वोत्तम साधन "कंप्यूटर" का नाम भी दें तो यह किंचितमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस सजीव, स्वचालित एवं स्वनियंत्रित "कंप्यूटर" का एक संक्षिप्त परिचय यहां दिया गया है।

मानव समुदाय को स्तनधारी वर्ग की सर्वोत्कृष्ट कृति मानना इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि उसके मस्तिष्क संरचना में अवश्य ही कोई विशिष्टता होगी जो उसे अन्य प्राणी जगत से पृथक करती होगी। मानव-मस्तिष्क की प्राधान्यता तब जान पड़ती है जब उसके सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। मानव के शरीर का मापदंड व आकार के अनुपात में उसके मस्तिष्क का आकार बड़ा होता है। औसत पुरुषों में इसका वज़न लगभग 1380 ग्राम तथा औसत स्त्रियों में लगभग 1250 ग्राम होता है। मानव मस्तिष्क को अध्ययन की सुविधा के दृष्टि से प्रमुख तीन भागों में विभाजित किया गया है-

1. अग्र-मस्तिष्क या प्रोसेनसीफैलॉन
2. मध्य-मस्तिष्क या मिसेन्सीफैलॉन
3. पश्च-मस्तिष्क

मस्तिष्क के विभिन्न भागों का कार्य :

मानव-मस्तिष्क के विभिन्न भाग, अपनी-अपनी कार्य क्षमता के अधीन, भिन्न-भिन्न कार्यों को करते हैं, (चित्र 1 एवं 2)।

प्रमस्तिष्क :

यह मनुष्यों एवं सचेतन गतिविधियाँ संचालित करता है। हमारी इच्छाएँ, स्मरण शक्ति, ज्ञान, वार्तालाप अथवा कथोपकथन, यह सभी गतिविधियाँ, प्रमस्तिष्क के सौजन्य व सहयोग के आधार पर ही कार्यान्वित होती हैं। ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त प्रेरणाओं का विश्लेषण एवं समन्वय होता है, जो तत्पश्चात् ऐच्छिक पेशियों को अनुकूल प्रतिक्रियाओं के लिए प्रेरित करती हैं। यह सभी प्रतिवर्ती क्रियाओं - जैसे हंसना, रोना, मूत्र-विसर्जन आदि पर भी नियंत्रण रखती हैं।

घ्राण-भाग :

यह मनुष्य को गंध ज्ञान से अवगत करता है।

डाइएनसीफैलॉन :

मस्तिष्क के इस भाग के दाहिने और बायें भाग में स्थित दो गोलाकार पिंड, जिन्हें थैलेमाई कहा जाता है, उन सोमैटिक संवेदी प्रेरणाओं का मार्ग दर्शन करती हैं, जो मध्य एवं पश्च मस्तिष्क तथा सुषुम्ना से प्रमस्तिष्क गोलार्द्धों तक ऐच्छिक गतिविधियों का संचार कराती हैं। मात्र इतना ही नहीं, यह अत्यधिक ताप, शीत अथवा

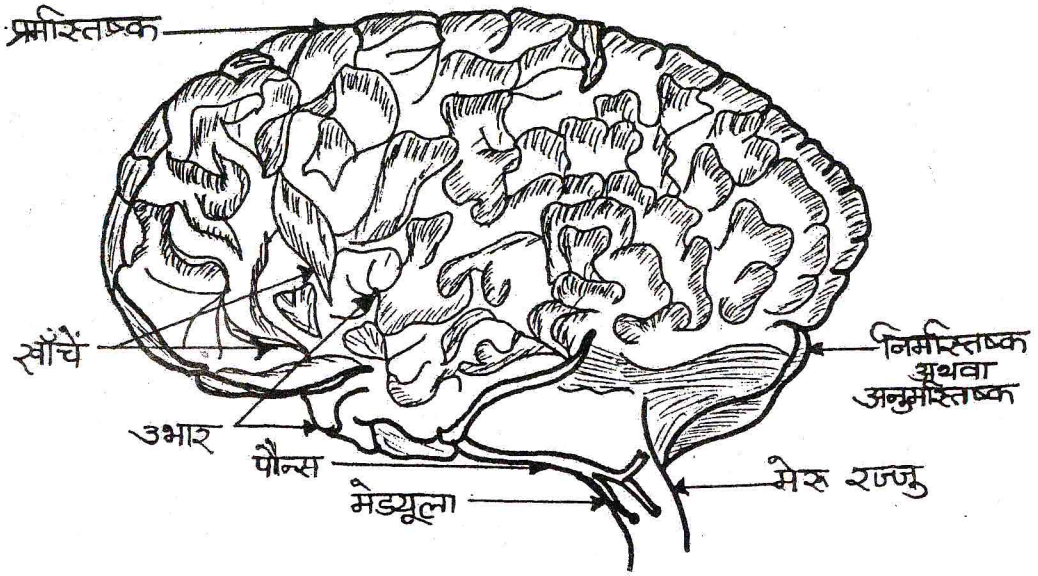

चित्र-1 : पार्श्व स्थिति से मानव मस्तिष्क के दृश्य भाग

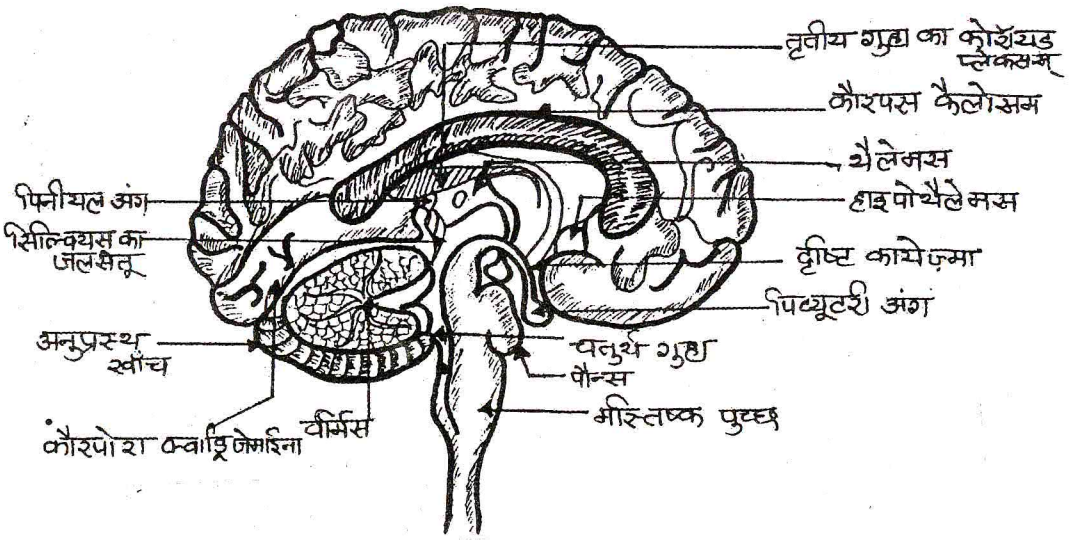

चित्र-2 : मानव मस्तिष्क का लंब अंत:काट - कौरपस कैलोसम व अन्य भागों को दर्शाते हुए

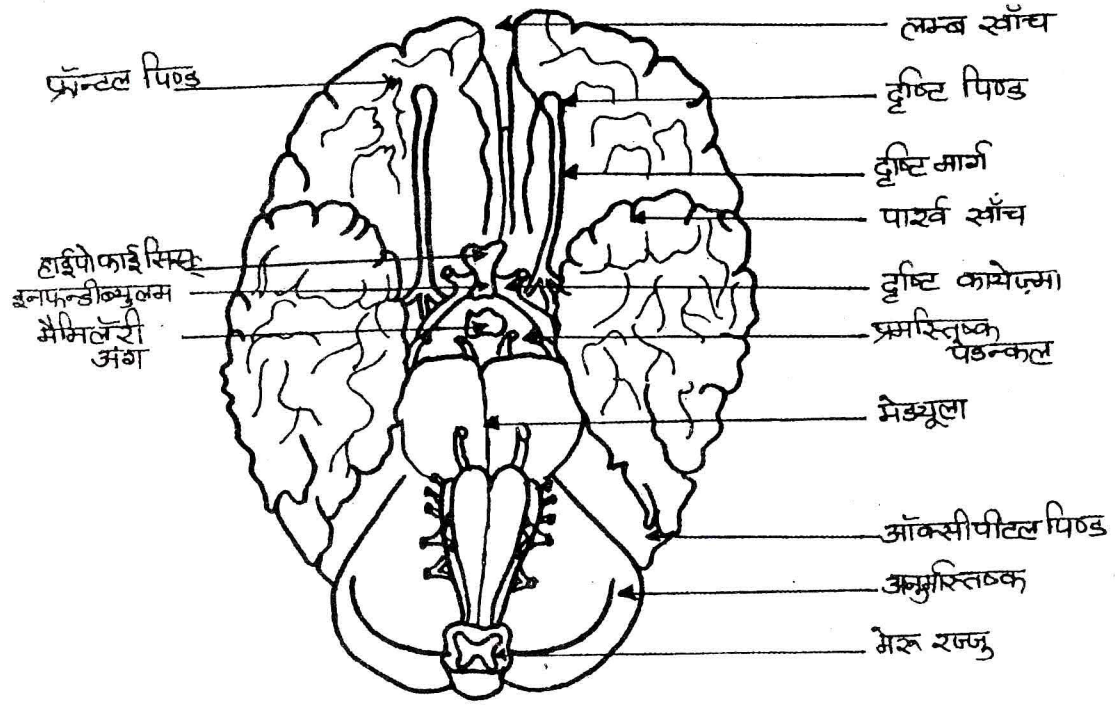

चित्र-3 : मानव मस्तिष्क का निम्न आधार भाग - प्रमस्तिष्क, अनुमस्तिष्क एवं मस्तिष्क तना के विभिन्न अवयव

पीड़ा आदि जैसे संवेदनशील तत्त्वों के अभिज्ञान का केंद्र भी माना जाता है । इनका अधरतलीय भाग अर्थात हाईपोथैलेमस स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के संगठन केंद्र का परिचय प्राप्त करता है । अग्रमस्तिष्क का यह भाग भूख, प्यास, थकावट, ताप पर नियंत्रण, नींद, प्यार, घृणा, क्रोध एवं तृप्तता जैसी मनोभावनाओं का भी बोध केंद्र है । इसके अतिरिक्त मस्तिष्क के इस भाग में बने पिटयूटरी ग्रंथि अनेक महत्त्वपूर्ण हारमोन्स का स्रावन करती है । साथ ही इसी भाग में स्थित दृष्टि संवेदनाओं को प्रमस्तिष्क तक पहुंचाता है ।

मध्यमस्तिष्क :

मध्यमस्तिष्क का अहम् कार्य है दृष्टि एवं श्रवण प्रतिवर्ती क्रियाओं को नियंत्रित करना ।

अनुमस्तिष्क अथवा निमस्तिष्क :

यह ऐच्छिक पेशियों, संधियों आदि में स्थित ज्ञानेंद्रियों से संवेदनाओं को प्राप्त करने के उपरांत उन्हें प्रमस्तिष्क तक पहुंचाता है । उसके पश्चात प्रमस्तिष्क से प्रसारित चालक प्रेरणाओं के अनुसार ऐच्छिक पेशियों के तनाव का नियमन करके शरीर की भंगिमा, संतुलन, गति, आदि कलापों पर नियंत्रण रखता है (चित्र-3) ।

मस्तिष्क पुच्छ :

मानव मस्तिष्क का यह भाग हृदय-स्पदंन, श्रवण-संतुलन, श्वास की गतिविधियाँ व उसकी दर, रक्तदाब, रुधिर वाहिनियों के सिकुड़न व विकसन, आहार नाल की तरंगात्मक गति व विभिन्न ग्रंथियों के स्रावण पर नियंत्रण रखता है । यह मस्तिष्क के शेष अन्य भागों से मेरू-रज्जु तक प्रेरणाओं का परिवहन करता है ।

मानव-मस्तिष्क को कंप्यूटर की संज्ञा क्यों? :

मस्तिष्क मानव शरीर का आदेश केंद्र है एवं साथ ही मन का निवास स्थल भी है । बिना किसी को अवगत कराये ही, यह शरीर के विभिन्न कार्यों पर नियंत्रण रखता है । यही शरीर का वह भाग है, जिसे आधुनिक युग में

"कंप्यूटर" की संज्ञा दी जा सकती है । जिस प्रकार कंप्यूटर को विभिन्न तथ्यों का सेवन कराकर, उसे याद रखने के लिए आदेश दिया जा सकता है उसी प्रकार, मस्तिष्क को भी अगर कोई वस्तु या तथ्य याद रखने के लिए कहा जाय, तो वह इस आज्ञा को निर्विरोध मान लेता है । कंप्यूटर की कार्य दक्षता मानव-मस्तिष्क की अपेक्षा 1/1,00,000 की ही है । कंप्यूटर अपनी कार्य क्षमता को तब दर्शाता है, जब हम तकनीकी साधनों का प्रयोग करते हुए उसे आदेश देते हैं । वह उतना ही कार्य करता है जितने की उससे अपेक्षा की जाय । जिन तथ्यों से उसे अवगत नहीं कराया जाता उसके संदर्भ में कोई भी जानकारी देना वह अपना अपमान समझता है । हमारे लाख चाहने पर भी वह उन अज्ञान तथ्यों के विषय में हमें कोई भी जानकारी देने में असमर्थ होता है । इससे यह स्पष्ट होता है कि यह उतना ही उगल सकता है जितना निगलवाया जाय । मानव मस्तिष्क के साथ ऐसी स्थिति कभी नहीं हो सकती । इस सजीव कंप्यूटर रूपी मस्तिष्क को चलाने के लिए किसी "बटन" की आवश्यकता नहीं है । यह स्वत: ही चलता है और साथ ही अपने ऊपर नियंत्रण भी रखता है । इस पर संपूर्ण शरीर का उत्तरदायित्व अनुमति लिये ही अपने कार्य-भार को स्वत: ही संभालता रहता है । इसके अतिरिक्त किसी बात को सोचना व किसी भी सिद्धांत का निर्णय लेना एक अहम् कार्य, जो मानव मस्तिष्क ही कर सकता है, मशीनी कंप्यूटर नहीं । मानव-मस्तिष्क अपने में बुद्धिमत्ता होने का परिचय देता है जिसका कंप्यूटर के पास सर्वथा अभाव है । मानव-मस्तिष्क तब तक मानव शरीर का साथ देता रहता है जब तक कोई विषम परिस्थिति इसके संतुलन को बिगाड़ न दे । यह मान्यता है कि- "आकाश गंगा" में जितने तारे हैं, लगभग उतनी ही कोशिकाएँ मानव-मस्तिष्क में विद्यमान हैं, जिनकी संख्यात्मक गणना कम से कम, 100 गीगा कोशिकाएं हो सकती है ।

जिस प्रकार, साधारण कंप्यूटर बिगड़ सकता है, उसी प्रकार मानव मस्तिष्क में भी त्रुटियाँ आ सकती हैं । मशीनी-कंप्यूटर की सभी त्रुटियों को सुधारा जा सकता है परंतु मानव-मस्तिष्क की सभी त्रुटियों का निराकरण कर पाना असंभव है ।

मस्तिष्क के सभी अवयवों का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि यह हमारे शरीर का नियंत्रण कक्ष है, जिस पर उत्तरदायित्व है शरीर में घटित होने वाले विभिन्न क्रियाओं का सुचारू रूप से संपन्न कराना । मस्तिष्क स्वयं भी इस तथ्य से अवगत है कि उसके कर्तव्यों की परिधि कितनी विस्तृत है इसी कारण उसकी सदैव यही चेष्टा होती है कि वह उन मसलों को अपने अंदर से निकालकर बाहर फेंक दें, जिसकी उपस्थिति से उसका संतुलन बिगड़ता हो । उसके कई कक्ष हैं जिन पर विभिन्न कार्यों का बोझ है । इन्हीं में से एक अति सूक्ष्म कक्ष में कंप्यूटर का स्थान है । मात्र एक साधन नहीं, अपितु एक अस्तित्व के रूप में, जहां यादों को, तथ्यों के सिद्धांतों को, घटनाओं को समेटकर रखा जाता है । कभी न विस्मृत होने के लिए कंप्यूटर की कार्य प्रणाली की भांति हम अपने मस्तिष्क के इस कक्ष से प्रिंटआउट प्राप्त कर सकते हैं । इस प्रकार, हमारा संपूर्ण मस्तिष्क एक कंप्यूटर नहीं है । इसका मात्र एक अंश ही कंप्यूटर की भांति कार्य करता है, पर याद रखने की बात यह है कि यह स्वत: ही कार्य करता है ।

प्रतिवर्ष नयी तकनीकों को विकसित किया जा रहा है जो मस्तिष्क के अंत: कार्य क्षमता का हमें दर्शन कराता है । कुछ मशीनें, जैसे PET स्कैनर व CAT स्कैनर मानसिक क्रियाओं की पहचान की रूपरेखा को अभिव्यक्त करती हैं । परंतु, मस्तिष्क का वह भाग जिसका कार्य स्मृति, बुद्धिमत्ता, व्यक्तित्व, आदि से संबंधित है; उसकी क्षमता आज तक हमसे छुपी हुई है । ऐसा आभास होता है जैसे मस्तिष्क के एकाधिक अंशों में इन कार्यों को रूप दिया जाता है, और जब हम इसके जटिल प्रसार माध्यम का अध्ययन करते हैं, तब यह जान सकते हैं कि इसके जटिल अंश में 100 गीगा कोशिकाओं के मध्य समन्वय स्थापित कराने की क्षमता है । वास्तव में मस्तिष्क ही हमारा गुरु है ।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2000) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

धूम्रपान से निकली कार्बन मोनोऑक्साइड के विषैले प्रभाव

डॉ. साहब सिंह, वैज्ञानिक
एवं एन. एस. त्यागी, तकनीकी अधिकारी,
केंद्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की - 247 667

सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है यह अधिकांश लोग मानते हैं। वास्तविकता यह है कि सिगरेट पीने से श्वसन तंत्रों में कैंसर, हृदय रोग, मोतियाबिंदु, घुटनों में दर्द, मधुमेह इत्यादि होने का डर हमेशा बना रहता है। श्वसन तंत्र के जो भाग ऑक्सीजन के सीधे संपर्क में आते हैं उनका ऑक्सीकरण हर सांस के साथ होता रहता है। इस क्रिया में उपोत्पाद के रूप में अस्थिर ऑक्सीजन के मुक्त मूलक बनते हैं जो किसी भी सामान्य एवं स्वस्थ कोशिका के साथ क्रिया कर उन्हें नष्ट कर देने में सक्षम होते हैं। प्रदूषित वातावरण, शारीरिक तथा मानसिक तनाव, धूम्रपान, आदि से ऑक्सीजन के मुक्त मूलकों की उत्पत्ति अधिक होने लगती है और यदि कोशिकाओं का नष्टीकरण लगातार होता रहे तो यही कैंसर का रूप धारण कर लेता है। इस लेख में कार्बन मोनोऑक्साइड की हीमोग्लोबिन के साथ होने वाली अभिक्रियाएं, सिगरेट पीने पर निकलने वाली कार्बन मोनोऑक्साइड तथा कार्बन डाईऑक्साइड का गुणात्मक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

कुछ लोगों का कहना है कि सिगरेट पीने के बाद उनके दिमाग में परिवर्तन होने लगता है - नयी सोच, नयी चेतना, उत्पन्न होती है। वास्तव में सिगरेट पीने से निकली निकोटीन एक उत्तेजक रसायन है जिससे हम अधिक उत्साह महसूस करने लगते हैं। लेकिन ज्योंही निकोटीन की मात्रा घटती है हमें फिर से सिगरेट पीने की तलब लगती है। सिगरेट से निकलने वाले निकोटीन आदि असंख्य विषैले पदार्थों के साथ-साथ सिगरेट के प्रत्येक कश में ऑक्सीजन की कमी के कारण कार्बनडाई ऑक्साइड तथा कार्बन मोनोऑक्साइड गैस बनती है। कार्बन मोनोऑक्साइड की मात्रा सिगरेट की बनावट, सिगरेट पीने के ढंग आदि पर निर्भर करती है। यह गैस शरीर में प्रवेश करती है तथा प्राणी पर अनेकों प्रभाव छोड़ती है। यह गैस पूरे शरीर की कोशिकाओं तक ऑक्सीजन पहुंचाने वाले हीमोग्लोबिन (HG) की क्षमता में अवरोध उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त कार्बोऑक्सीही-मोग्लोबिन की रक्त में उपस्थिति शेष ऑक्सीहीमोग्लोबिन के पृथकीकरण में भी बाधा डालती है जिससे शरीर के अधिकांश तंतु एवं कोशिकाएं ऑक्सीजन विहीन हो जाती हैं। प्रारंभ में प्राणी सिर दर्द, चक्कर एवं थकावट महसूस करता है। कुछ परिस्थितियों में कार्बन मोनो ऑक्साइड की 100 भाग प्रति दस लाख की सांद्रता होने पर भी इसका प्रभाव महसूस करता है। प्रयोगों से यह भी सिद्ध हुआ है कि गर्म वातावरण तथा शारिरिक एवं मानसिक कार्य के समय कार्बन मोनोऑक्साइड की मात्रा भी तीव्रता से प्रभाव डालती है। तालिका-1 में प्राणी पर कार्बन मोनोऑक्साइड से होने वाले लक्षण तथा प्रभाव दर्शाये गये हैं। मनुष्य के लिए प्राण वायु (ऑक्सीजन) अति आवश्यक है। बिना ऑक्सीजन के प्राणी की मृत्यु निश्चित है। इसकी कमी में भी प्राणी दम तोड़ देता है परंतु कार्बनडाईऑक्साइड की अधिकता से भी प्राणी मर सकता है। धूम्रपान में ऑक्सीजन का स्थान कार्बन मोनोऑक्साइड तथा कार्बन डाईऑक्साइड ले लेती हैं अतः ऑक्सीजन की कमी होने लगती है (तालिका-2 एवं-3)।

तालिका -1 : प्राणियों पर कार्बन मोनोऑक्साइड के लक्षण व प्रभाव

कार्बन मोनोऑक्साइड सांद्रता 'भाग प्रति दस लाख'	अनावरण समय (घंटे)	लक्षण एवं प्रभाव
100	कई	प्रभावहीन
400-500	>1	उल्लेखनीय
600-700	>1	उल्लेखनीय
1000-1200	>1	असुविधाकर
1500-2000	1	हानिकारक
4000	<1	घातक
10,000	1/60	घातक

तालिका-2 : ऑक्सीजन की कमी तथा उस कारण से प्राणी पर लक्षण एवं प्रभाव

(बुलेटिन ऑफ रिसर्च नं. 53 जुलाई, 1963)

हवा में ऑक्सीजन (प्रतिशत)	लक्षण एवं प्रभाव
20 या अधिक	सामान्य
12 से 15	मांसपेशियों में खिंचाव, कार्य में शिथिलता
10 से 11	निर्णय लेने में देरी, अचेतन होने की स्थिति
6 से 8	अचेतन, तुरंत उपचार की आवश्यकता
6 या कम	मृत्यु

तालिका -3 : कार्बोऑक्सीहीमोग्लोबिन की सांद्रता तथा उसके प्राणी पर लक्षण एवं प्रभाव

('आर्क - एनवायरोन हेल्थ' 7, 524, 1963)

कार्बन ऑक्सीहीमोग्लोबिन मात्रा (प्रतिशत में)	लक्षण एवं प्रभाव
0-10	कोई लक्षण या प्रभाव नहीं
10-20	माथे पर तनाव, हल्का सिर दर्द
20-30	सिर दर्द तथा कनपटी में कंपन
30-40	तेज सिर दर्द, कमजोरी, चक्कर, आँखों के सामने धुंधलापन, उबकाई, उल्टी
40-50	सन्निपात, नाड़ी तथा सांस में तेजी, ऐंठन, निद्रा
60-70	निद्रा, हृदय में तनाव, श्वसन क्रिया मंद संभवतया मृत्यु
70-80	नाड़ी मंद, श्वसन क्रिया अति क्षीण, एक घंटे में मृत्यु
90	कुछ मिनट में मृत्यु

हीमोग्लोबिन की संरचना :

हीमोग्लोबीन अणु (चित्र-1) में ग्लोबिन अणु का हीम (रक्त का लाल रंग पदार्थ) के साथ उचित बंधन अतिआवश्यक है अन्यथा रक्त में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इन दोनों के बंधन में अल्प परिवर्तन भी सिकिल सेल एनीमिया जैसी बीमारी को जन्म देता है। इस कारण महीन रक्त नलिकाओं में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। रक्त जमने लगता है तथा ऑक्सीजन ले जाने की क्षमता घटने लगती है। श्वसन क्रिया एक साधारण सांस लेने की ही प्रक्रिया नहीं है अपितु शरीर की अन्य तंत्र पद्धतियों की भांति श्वसन पद्धति भी एक जटिल क्रिया है। श्वसन क्रिया में सांस द्वारा फेफड़ों में हवा के आदान-प्रदान से शरीर को ऊर्जा मिलती है। फेफड़ों में जब रक्त सांस के साथ ली गयी हवा में विद्यमान ऑक्सीजन के संपर्क में आता है तब रक्त में उपस्थित हीमोग्लोबिन ऑक्सी-हीमोग्लोबिन में परिवर्तित हो जाता है।

तालिका - 4 : सिगरेट कश के धुंए का विश्लेषण

सिगरेट कश के धुंए का नमूना	फिल्टर वाली लंबी सिगरेट				फिल्टर रहित छोटी सिगरेट			
	कार्बन मोनाऑक्साइड		कार्बन डाईऑक्साइड		कार्बन मोनोऑक्साइड		कार्बन डाईऑक्साइड	
	भाग प्रति दस लाख	ग्राम x 10^{-4}	भाग प्रति दस लाख	ग्राम x 10^{-4}	भाग प्रति दस लाख	ग्राम x 10^{-4}	भाग प्रति दस लाख	ग्राम x 10^{-4}
0.5 सेमी. से पहले	9363	3.09	62244	32.37	6807	2.25	67438	35.07
1 से 2 सेंमी. के मध्य	11574	3.82	76454	39.76	-	-	-	-
3 से 4 सेंमी. के मध्य	18501	6.11	77787	40.45	17140	5.66	171224	89.04
5 सेमी. के बाद	24629	8.13	91227	47.44	22819	7.53	11374	59.14

तालिका - 5 : सिगरेट कश के धुंए का विश्लेषण

सिगरेट कश की तीव्रता	फिल्टर वाली लंबी सिगरेट				फिल्टर रहित छोटी सिगरेट			
	कार्बन मोनोऑक्साइड		कार्बन डाईऑक्साइड		कार्बन मोनोऑक्साइड		कार्बन डाईऑक्साइड	
	भाग प्रति दस लाख	ग्राम x 10^{-4}	भाग प्रति दस लाख	ग्राम x 10^{-4}	भाग प्रति दस लाख	ग्राम x 10^{-4}	भाग प्रति दस लाख	ग्राम x 10^{-4}
मंद	17688	5.84	64852	33.72	18072	5.96	105234	45.72
मध्यम	25427	8.39	87564	45.53	2744	9.06	126339	65.70
उच्च	41891	13.82	137259	71.37	-	-	-	-

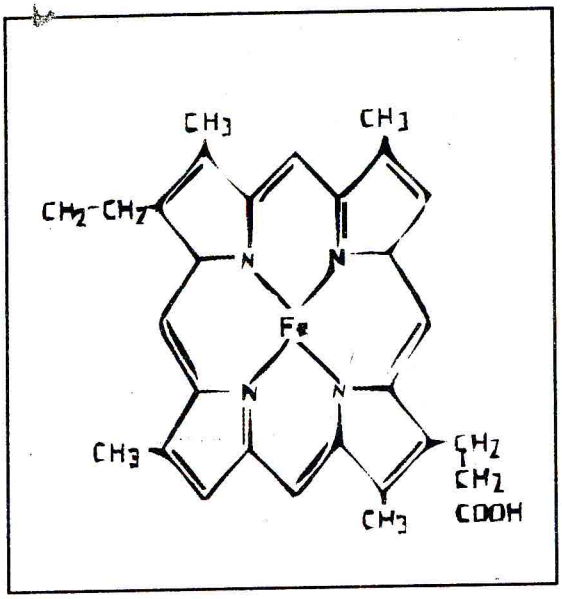

चित्र-1 : हीमोग्लोबिन अणु की संरचना

ऑक्सीहीमोग्लोबिन धमनियों द्वारा तंतुओं में पहुंचकर प्रत्येक कोशिका को ऑक्सीजन उपलब्ध करा देता है जो भोजन से लिये गये आवश्यक तत्त्वों को जलाने का कार्य करती है। इस अभिक्रिया में उत्पन्न कार्बन डाईऑक्साइड हीमोग्लोबिन शिराओं के द्वारा फेफड़ों में आता है तथा उच्छवास में यह गैस सांस के द्वारा बाहर निकल जाती है। इस श्वसन क्रिया में हवा के आदान प्रदान से वायु की अल्प मात्रा प्राण वायु की तरह रुधिर में ही रह जाती है जो जीवन के लिए अति आवश्यक है। सांस लेने की दर शरीर के परिश्रम पर निर्भर करती है। शारीरिक परिश्रम में मांसपेशियों को अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अतः इसकी पूर्ति के लिए अधिक ऑक्सीजन तथा अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। दुर्भाग्यवश, हीमोग्लोबिन कार्बन मोनोऑक्साइड से भी बंधन बनाती है, जो ऑक्सीजन के बंधन से 200 गुना अधिक शक्तिशाली होता है। जिससे हीमोग्लोबिन की ऑक्सीजन को तंतुओं में पहुंचाने की क्षमता को कम कर देती है। ये दोनों अभिक्रियाएं इस प्रकार दर्शायी जाती हैं :

$(HG) + O_2 \rightarrow$ ऑक्सीहीमोग्लोबिन+पानी ...(1)

$HG\text{-}O_2$(जलीय)+CO(गैस)=HG-CO (जलीय)+O_2गैस

जहां ऑक्सीजन की प्रचुरता होनी चाहिए वहीं धूम्रपान करते समय ऑक्सीजन के स्थान पर कार्बन मोनोऑक्साइड तथा अन्य विषैली गैसें जाने लगती हैं। आवश्यकतानुसार ऑक्सीजन न मिलने पर मनुष्य और तेजी से सांस लेने लगता है और फेफड़ों में उपस्थित अलवियोली अपना आकार बढ़ा देती हैं। कार्बन मोनोऑक्साइड का संपर्क और अधिक होने लगता है। सामान्य अवस्था में कश लेने की बारंबारता 2 कश प्रति मिनट होती है तथा एक कश में लगभग 30 मिली. आयतन खींचता है लेकिन असामान्य अवस्था में कश का आयतन, कश लेने की गहराई, कश लेने की बारंबारता, भिन्न-भिन्न हो सकती है। अतः प्रत्येक कश में मिलने वाली कार्बन मोनोऑक्साइड की मात्रा भी भिन्न-भिन्न होगी।

कार्बन मोनोऑक्साइड की रक्त से अभिक्रिया तथा प्राणनाशक होने के वास्तविक कारणों पर अनेकों वैज्ञानिक कार्य कर रहे हैं। हाल ही में स्टेफिन आर. थोम. तथा उनका दल कार्बन मोनोऑक्साइड से पीड़ितों में हीमोग्लोबिन कार्बन मोनोऑक्साइड बंधन की परंपरागत व्याख्या पूरी तरह समायोजित कर सके। शोधकर्ताओं ने एक विशेष जैव रसायन अभिक्रिया का आविष्कार किया जो इस परंपरागत कार्बन मोनोऑक्साइड विष प्रभाव की व्याख्या का विकल्प हो सकता है। कार्बन मोनोऑक्साइड हीम प्रोटीन पर नाइट्रिन ऑक्साइड के स्थान को छीन लेती है जिससे कोशिकाओं में नाइट्रिक ऑक्साइड की मात्रा बढ़ने लगती है। नाइट्रिक ऑक्साइड की अधिक मात्रा मस्तिष्क की कोशिकाओं तथा अन्य तंतुओं के लिए घातक है। शोधकर्ताओं ने प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध किया कि यदि कार्बन मोनोऑक्साइड की मात्रा बढ़ाते चले जायं तो नाइट्रिक ऑक्साइड की भी मात्रा बढ़ती चली जाती है तथा कोशिकाओं को तीव्रता से नष्ट करने लगती हैं। अतः कार्बन मोनोऑक्साइड के वातावरण में रहने वाले सभी प्राणियों की कोशिकाएं हर समय नष्ट होती रहती हैं। प्रो. थोम का मानना है कि कार्बन मोनोऑक्साइड से होने वाली घटनाओं की यह जैव रसायन अभिक्रिया एक अनूठी खोज है जिससे इस प्राणनाशक ज़हरीली गैस के

दु:अभाव से निपटने के लिए एक नया रास्ता प्रशस्त हो सकेगा ।

कार्बन मोनोऑक्साइड की रुधिर से होने वाली अभिक्रिया चाहे जो भी हो आज के इस प्रदूषित वातावरण में हमारे शरीर की आंतरिक कोशिकाएं किस कारण नष्ट होती हैं इससे हमें जागरूक रहने की चेतावनी तथा उपचार की जानकारी मिलती है । सिगरेट के धुंए के आंकड़ों से यह भी विदित होता है कि मंद गति से खींचे गये कशों में कार्बन मोनोऑक्साइड की मात्रा कम होती है जबकि तीव्रता से खींचे गये कशों में कार्बन मोनोऑक्साइड की मात्रा अधिक है । गहराई तथा तीव्रता से खींचे गये कश में उतनी तीव्रता से हवा प्रवेश नहीं कर पाती है अत: सिगरेट का दहन भी अपूर्ण रहता है इस कारण गहराई से लिये गये कश में कार्बन मोनोऑक्साइड की मात्रा अधिक हो जाती है (तालिका-4 एवं-5) ।

न्यूट्रॉन ट्रैप

(पृष्ठ 47 का शेष भाग ...)

करते थे । किंतु फोटॉन कणों की अत्यधिक घनता के कारण उच्च रेडिएशन-दाब उन पर कार्य करता था । अत: निर्माण के कुछ ही क्षण बाद यह नाभिक टूट-फूट जाते थे । अगले कुछ सेकंडों में विश्व के शीघ्र प्रसरण के कारण फोटॉनों का विकिरण दाब कम प्रभावशाली हुआ ।

इस कालखंड में जो नाभिक बने, उन्हें विकिरण दाब तोड़ नहीं पाया, अत: उन्हें स्थिरता प्राप्त हुई । इनमें अधिकतर हल्के न्यूक्लियस थे । उदाहरण के तौर पर H, He आदि । विश्व के निर्माण के समय इन मूलतत्त्वों की बहुलता का अनुपात (abundance ratio) क्या था, इसका अध्ययन बिग बैंग न्यूक्लिओसिंथेसिस सिद्धांत में किया जाता है । इस सिद्धांत में न्यूट्रॉन के क्षय-काल का सही मान महत्वपूर्ण है । यह मान जितनी अधिक परिशुद्धता के साथ हम जान सकते हैं, विश्व में विविध मूलतत्त्वों की बहुलता का अनुपात हम उतनी अधिक परिशुद्धता के साथ परिकलित कर सकते हैं ।

न्यूट्रॉन का आभ्राम $\pm 1/2$ होता है । इसलिए वे फर्मिऑन प्रकार के हैं । एक ही क्वांटम प्रणाली के दो सदस्य फर्मिऑन पूर्णतया एक अवस्था में (समान आंतरिक ऊर्जा, संवेग संबंधित क्वांटम संख्याएं, इत्यादि) नहीं हो सकते । न्यूट्रॉनों को पाशबद्ध करने के बाद वे एक ही क्वांटम प्रणाली का हिस्सा बन जाते हैं । उनका उपयोग अति-शीत फर्मी वायु के गुणधर्मों का अध्ययन करने हेतु किया जा सकता है । इस प्रयोग से न्यूट्रॉन तारे, श्वेत बटु तारे आदि को समझने में सरलता हो सकती है ।

न्यूट्रॉन ट्रैप कण-भौतिक विज्ञानी के लिए भी उपयुक्त है, क्योंकि ट्रैप में बद्ध न्यूट्रॉनों का उपयोग काल-उत्क्रमण की निश्चरता (time reversal invariance) के उल्लंघन के प्रयोग हेतु किया जा सकता है ।

इस समय विश्व की कई प्रगत प्रयोगशालाएं न्यूट्रॉन कणों को पाश-बद्ध करने की दिशा में अथक परिश्रम कर रही हैं । निश्चित ही न्यूट्रॉनों का अध्ययन हमें कुछ कूट प्रश्नों के उत्तर तथा उनके साथ जुड़े हुए कुछ और प्रश्नों की भेंट देकर विश्व को समझने के हमारे प्रयत्न को नयी दृष्टि तथा नया आयाम देगा ।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2000) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त (अहिंदी भाषी)

पुष्प निर्जलीकरण की विधियां एवं इसकी व्यावसायिक उपयोगिता

डॉ. सुबोध कुमार दत्ता
पुष्पकृषि अनुभाग,
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान,
लखनऊ -226 001

राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में फूलों और पत्तियों को बिना उनकी मौलिक सुंदरता कम किये, सही ढंग से सुखाया जाता है और इसके साथ-साथ फूलों की हस्तकला संबंधित सामग्री भी तैयार की जाती है । इस संस्था द्वारा ऐसी विधियां विकसित की गयी हैं जिनके द्वारा सुखाये गये फूलों, पत्तियों और शाखाओं आदि का वही ताजा रूप कई माह अथवा कई वर्षों तक बनाये रखा जा सकता है । उनका मौलिक-आकार, रंग और प्रकृति बिल्कुल वैसी ही बनी रहती है जैसी सुखाने से पहले होती है । अतः घर की अंदरूनी सजावट के लिए यह बहुत ही उपयुक्त वस्तु सिद्ध होती है ।

विश्व के बहुत सारे देशों में फूलों की खेती करना एक लाभदायक व्यवसाय बन गया है । फूलों का व्यापार विश्व में बहुत तेजी से फैलता जा रहा है । सजावटी फूलों को घरेलू उपयोग के अतिरिक्त विदेशी बाजारों में भेजने की संभावना बहुत तेजी से बढ़ती जा रही है । कटे हुए फूलों का गुलदस्ता फूलों के व्यापार का एक मुख्य अंग है । फूलों के गुलदस्तों की मांग दिनप्रति दिन बढ़ती जा रही है और उनका विक्रय मूल्य काफी ऊपर चला गया है । लेकिन फूलदान में सजाये गये फूलों का जीवन बहुत सीमित होता है । फूलदान में लगे फूलों की ताजगी बनाये रखने तथा उनका जीवन काल बढ़ाने के लिए चाहे कितने ही उत्तम प्रकार के रासायनिक पदार्थ प्रयोग क्यों न किये जायें, उनको अधिक समय तक सुरक्षित रखना संभव नहीं है । किसी विशेष समय या स्थान पर मनचाहे फूलों के उपलब्ध न हो पाने से अतिरिक्त समस्या पैदा हो जाती है । अतः यह जानने के प्रयास किये गये कि क्या फूलों को ताजा रखने के लिए दूसरा विकल्प भी हो सकता है ? शायद हमने कभी किसी मित्र को सूखे हुए फूल भेंट करने के विषय में कभी नहीं सोचा होगा । लेकिन अब इस तरह की कई प्रकार की विधियों का प्रयोग हो रहा है जिनके द्वारा फूल और पत्तियों को पूर्णतया जलरहित करके इस प्रकार से सुखाया जाता है कि उनका रंग और रूप एक लंबे समय तक वैसा का वैसा ही बना रहता है ।

इस प्रकार सुखाये गये फूलों और पत्तियों की मौलिक सुंदरता और ताजगी का आनंद एक लंबे समय तक लिया जा सकता है और किसी विशेष अवसर पर भी इसका प्रयोग किया जा सकता है ।

निर्जलीकरण करने की विधियां :

संपूर्ण जल निकाल देने या निर्जलीकरण करने का अर्थ है कि किसी पदार्थ को कृत्रिम ढंग से उत्पन्न किये गये ताप में नियंत्रित तापमान, आर्द्रता और वायु प्रवाह में सुखाया जाये । इस संस्थान द्वारा निर्जलीकरण की कई विधियां विकसित की गयी हैं ।

1. वायु में सुखाना :

यह विधि सबसे आसान और सस्ती है । इसमें फूलों को किसी रस्सी या तार में लटकाकर या सोखता कागज अथवा अखबारों के कागज पर फैलाकर प्राकृतिक अवस्था में सुखाया जाता है । इस विधि को अपनाना सही मौसम पर निर्भर करता है ।

2. दबाकर सुखाना :

किसी किताब के पन्नों में दबाकर फूलों और पत्तियों को सुखाने की विधि सबसे अधिक प्रचलित है। यद्यपि इस विधि द्वारा सुखाये गये पदार्थों की मूल आकृति बनाये रखना संभव नहीं है लेकिन उसका मौलिक रंग वैसा ही बना रहता है। फूल और पत्तियों को पुरानी किताबों अथवा पत्रिकाओं के पन्नों के बीच में रख दिया जाता है। उसके पश्चात् उस पर कोई भारी वस्तु रखकर उसको दबाये रखना होता है।

3. गाड़कर, दबाकर सुखाना :

सुखाये गये पदार्थों में वायु तापमान के कारण उनके सिकुड़ जाने अथवा आकार, प्रकार बदल जाने से रोकने के लिए फूलों और पत्तियों को बड़ी सावधानी से रेत (बालू) या पत्थर के बुरादे में गाड़कर किसी उपयुक्त बर्तन में रख दिया जाता है।

गाड़ी हुई वस्तु को सुखाने के विभिन्न तरीके हैं :

- बर्तन को कमरे के तापमान में तब तक रहने दिया जाय जब तक सुखायी जाने वाली वस्तु ठीक प्रकार से सूख न जाय।
- बर्तन को प्रतिदिन सूर्य के प्रकाश में रखकर भी सुखाया जा सकता है।
- कम समय में सुखाने के लिए बर्तनों को विद्युत चालित गर्म वायु भट्टी में नियंत्रित तापमान पर एक निश्चित समय के लिए रखा जाता है। यह विधि शीघ्रतापूर्ण है तथा सुखाये गये पदार्थ की उत्तमता भी श्रेष्ठ होती है। सुखाने के लिए तापमान 35^0 - 45^0 सें. के बीच में रखा जाता है और खुली हुई अवस्था का समय 48 घंटे से 72 घंटों के बीच रखा जाता है।
- गाड़कर दबाये हुए पदार्थ को वैक्यूम में भी सुखाया जा सकता है।
- गाड़कर दबाया हुआ पदार्थ माइक्रोवेव भट्टी में भी सुखाया जा सकता है (1-4 मिनट, 2-5 घंटे)। यह विधि अन्य विधियों से जल्दी हो जाती है और सुखाये गये पदार्थ भी श्रेष्ठतम होते हैं।

सुखाये जाने वाले पदार्थ की गुणवत्ता :

जिस पदार्थ में फूलों और पत्तियों को गाड़कर सुखाया जाय वह बहुत उत्तम प्रकार का होना चाहिए (कणाकार 0.02 से 0.2 मिमी.)। उसके संपर्क से फूलों के विभिन्न भागों में कोई हानिकारक रासायनिक प्रक्रिया नहीं होनी चाहिए। सोहागा, रेत या बालू, पत्थर का बुरादा, कॉर्न मील आदि साधारणतया सबसे अधिक प्रयोग किये जाने वाले सुखाने के पदार्थ हैं। बढ़िया किस्म की रेत फूल और पत्तियों को गाड़कर सुखाने के लिए सबसे अधिक उत्तम पायी गयी है, क्योंकि यह सबसे अधिक सस्ती होती है। यह भारी भी अधिक होती है, इसका प्रयोग भी अन्य पदार्थों की अपेक्षा सरल है तथा इसमें जल वाष्प के विरुद्ध कोई प्रतिक्रिया नहीं होती।

- पत्थर का बुरादा या रेत ही अधिकतर सुखाने वाले पदार्थ की तरह प्रयोग की जाती है।
- कूड़ादान, डेस्क ट्रे और मिट्टी के बर्तन आदि प्रयोग किये जाते हैं।
- फूल, फूल के साथ तना, पत्ती या टहनी और छोटा पौधा इन सभी को गाड़कर सुखाया जा सकता है।
- रेत या पत्थर का बुरादा दबाते समय धीरे-धीरे सावधानी से गिराना चाहिए। जिससे पुष्प के सभी अंग ठीक तरह से भर जायें और उनका आकार न बदलने पाये।

सावधानियां :

अच्छे परिणामों के लिए तथा बनायी गयी वस्तु की उत्तमता बनाये रखने के लिए समय-समय पर निम्नलिखित सावधानियां बरतना उपयुक्त होगा :

- सुखाने वाले पदार्थ को सूखे मौसम और धूप वाले दिन, ओस और नमी सूख जाने के बाद इकट्ठा किया जाय।
- एक समय में एक ही प्रकार का फूल दबाकर गाड़ना चाहिए।
- दबाकर गाड़े हुए फूल और पत्तियां सूखने के बाद बहुत ही सावधानी से बाहर निकालने चाहिए और उन्हें बहुत ही कोमलता और हल्के ढंग से उठाना चाहिए।

विधि की अनरूपता :

इस विधि का विकास उगाये गये फूलों की विविध

प्रकार की श्रेणियां, घासों, महीन पत्तियों वाले पौधों, रंग बिरंगी पत्तियों आदि को सुखाने के लिए किया गया है। वांछित अवधि, फूलों आदि के तैयार होने का समय तथा सुखाने में लगने वाला समय अलग-अलग पदार्थों के लिए भिन्न-भिन्न होता है। बहुत ही प्रचलित प्रकार के फूलों जैसे गुलाब, गेंदा, गुलदाउदी, डहेलिया, बोगेनविलिया आदि को सुखाने के लिए इस विधि का बहुत अधिक प्रयोग किया जाता है।

उपयोगिता :

सुखाये हुए फूलों और पत्तियों को विभिन्न प्रकार के कलात्मक अभिवादन पत्रों, दीवार पर सजाने योग्य पट्टियों, प्राकृतिक दृश्यों के चित्र आदि बनाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। सुखाये गये फूल पत्तियों को सुरक्षित रखने की अवधि काफी लंबी हो सकती है, यदि इन्हें शीशे या प्लास्टिक के जारों में रखकर नमी और धूल से बचाया जा सके। ताजे फूल और पत्तियों के स्थान पर सुखाये हुए फूल, पत्तियों को घरेलू सजावट या अन्य प्रकार के कलात्मक एवं व्यावसायिक उद् देश्यों के लिए प्रयोग किये जाने की संभावनाएं बहुत अधिक हैं। सुखाये गये फूलों से तैयार की गयी कुछ सजावटी वस्तुएं अंतिम आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित की गयी हैं।

बेरोजगार लोग, गृहणियां तथा गांवों में रहने वाली स्त्रियां फूल, पत्तियों को सुखाने का कार्य शुरू कर सकती हैं। फूलों की हस्तकला पर आधारित कुटीर उद्योग बेरोजगार युवक युवतियों को रोजगार दिलाने एवं गृहणियों तथा गांवों में रहने वाली स्त्रियों की आर्थिक आय बढ़ाने के लिए विकसित किया जा सकता है। इसकी अं तर्राष्ट्रीय मांग को देखते हुए इसके द्वारा विदेशी मुद्रा कमाने की संभावनाएं भी बहुत अधिक हैं। इसको सीखने के लिए बस थोड़े से प्रयास की आवश्यकता है, लेकिन इसके परिणाम बहुत लाभदायक हैं।

ताजे तोड़े हुए फूलों को विक्रय हेतु दो प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है- ताजे फूलों का गुलदस्ता बनाकर अथवा उन्हें सुखाकर।

पुष्प निर्जलीकरण प्रक्रिया का ढांचागत एवं उसके तकनीकी आर्थिक पहलू का विस्तारपूर्वक वर्णन आगे किया गया है। इस उद्योग को व्यवसाय के रुप में अपनाने में जो आर्थिक लागत आती है, उसका एक कच्चा अनुमान नीचे दिया गया है :

A. पूँजीगत लागत	रुपए
1. हॉट एअर ओवन	10,000
2. पेपर ट्रिमर	500
3. टेबिल ग्लास	300
4. कैंची, फॉरसेप, स्कैलपेल, ब्लेड इत्यादि	400
5. बालू एवं सिलिका जेल	1,000
6. सूखे पौधे	200
7. सोख्ता कागज (ब्लाटिंग शीट)	200
8. नरम ब्रुश	100
कुल योग =	**12,600**

B. उत्पादन 1600 ग्रीटिंग कार्ड के लिए	रुपए
1. सादी कार्डशीट (100) [56 x 70 सेमी, रु. 10/- प्रतिशीट]	1,000
2. रंगीन वेलवेट पेपर (40) [60 x 70 सेमी, रु. 5/- प्रतिशीट] [7 x 9 सेमी, साइज, 40 पीस प्रतिशीट]	200
3. चिपकाने वाला पदार्थ (35) (एडहेसिव ट्यूब)	350
4. सूखे फूल और पत्तियां	700
5. लिफाफे (1,600) [प्रति 25 पैसा]	400
6. कुशल मजदूर [रु. 1/- प्रति कार्ड]	1,600
कुल योग =	**4,250**

1600 ग्रीटिंग कार्ड उत्पादन मूल्य	4,250
मूल्य/कार्ड	2.66
विक्रय मूल्य/कार्ड	5.00
लाभ/कार्ड	2.34
लाभ	**3744**

(शेष भाग कृपया पृष्ठ 67 पर देखें...)

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2000) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त (अहिंदी वर्ग)

मध्य हिंद महासागर के बहुधात्विक पिंडों के खनन में तलछट के कणों की भूमिका

डॉ. अनिल भि. वलसंगकर
राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान,
दोना पावला, गोवा - 403 004.

मध्य हिंद महासागर के बहुधात्विक पिंडों को तांबा, निकिल और कोबाल्ट का बहुत महत्त्वपूर्ण स्रोत माना जाता है । सुयोग्य प्रौद्योगिकी खनन प्रणाली की उपलब्धि से 5200 मीटर गहरे समुद्र में स्थित इन पिंडों का खनन किया जा सकता है मगर समुद्रीय पर्यावरण पर दूरगामी परिणाम हो सकते हैं । इसलिए, अंतर्राष्ट्रीय समुद्रतल इसका प्राधिकरण (इंटरनेशनल सी बेड एथॉरिटी) के दिशा निर्देशानुसार 1997 में मध्य हिंद महासागर के बहुधात्विक पिंडिका क्षेत्र में पिंडिकाओं के खनन से समुद्रतल पर होनेवाले वातावरण प्रभाव का विस्तृत अध्ययन किया गया । इस अध्ययन के लिए मध्य हिंद बेसिन में, 5200 मीटर गहरे समुद्र में स्थित 3000 x 200 मीटर परीक्षण पट्टिका पर एक द्रवचलित (हाईड्रॉलिक) चूषण यंत्र (डिस्टर्बर) से समुद्री तलछट का उर्ध्वनिलंबन एवं पुनर्वितरण किया गया । तलछट के सूक्ष्म कणों के अध्ययन से परीक्षण पट्टिका में कृत्रिम चूषण से तैयार किया गया तलछट का पुच्छ किस दिशा में गया और तलछट के कणों के विस्थापन का विवरण प्रस्तुत लेख में किया गया है ।

हिंद महासागर के मध्य हिंद क्षेत्र में 5200 मीटर गहराई पर बहुधात्विक पिंडिकाओं के भंडार हैं । गहरे समुद्रतल पर पाये जानेवाले इन बहुधात्विक पिंडिकाओं के भंडार उन धातुओं के वास्तविक खजाने हैं जिनकी हमें आवश्यकता है । इन पिंडिकाओं में लौह, मैंगनीज, तांबा, निकिल, कोबाल्ट, अल्युमिनियम आदि महत्वपूर्ण धातुएं हैं । महासागर विकास विभाग, वर्ष 1982 से गोवा स्थित राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान द्वारा संचालित बहुधात्विक पिंडिकाओं पर राष्ट्रीय कार्यक्रम चला रहा है । मध्य हिंद बेसिन के बहुधात्विक पिंडिकाओं के महत्वपूर्ण सर्वेक्षण तथा खोज के कारण 1982 में संयुक्त राष्ट्र कन्वेन्शन (एन्क्लॉज) ने भारत को अग्रणी निदेशक का दर्जा दिया और उसे 1987 में मध्य हिंद बेसिन में 1,50,000 किमी.^{2} क्षेत्र भी आबंटित किया गया । एक अनुमान से इस क्षेत्र में तांबा, निकिल और कोबाल्ट का कुल स्रोत 676.5 x 10^6 टन है । देश की 60% तांबे की और 100% निकिल की मांग विदेशी मुद्रा खर्चकर पूरी की जाती है । इसलिए अब इस कार्यक्रम में पर्यावरण मूल्यांकन अध्ययन (इ. आइ. ए.), पिंडिका खनन और निष्कर्षण धातु कर्म के लिए प्रौद्योगिकी विकास को भी शामिल किया गया है ।

पांच किलोमीटर गहरे समुद्र में बहुधात्विक पिंडों के खनन के साथ समुद्री तलछट का उर्ध्वनिलंबन होना रोका नहीं जा सकता । पिंडों की खनन प्रणाली से समुद्री तलछट का बहुत बड़ा पुच्छ (प्लूम) तैयार होगा जिसके अंतर्जलीय तरंग की दिशा में काफी दूर तक फैलने की संभावना है । इस पुच्छ का दूरगामी परिणाम पानी, सूक्ष्मजीवी तथा समुद्री पर्यावरण पर हो सकता है । अनुमान है कि मध्य हिंद बेसिन में बहुधात्विक पिंडिकाओं के खनन से 600 किमी.^{2} के 504 x 10^7 तलछट को हानि पहुंच सकती है ।

अंतर्राष्ट्रीय समुद्रतल प्राधिकरण के दिशा निर्देश के अनुसार भारत को बहुधात्विक पिंडों की खनन प्रक्रिया

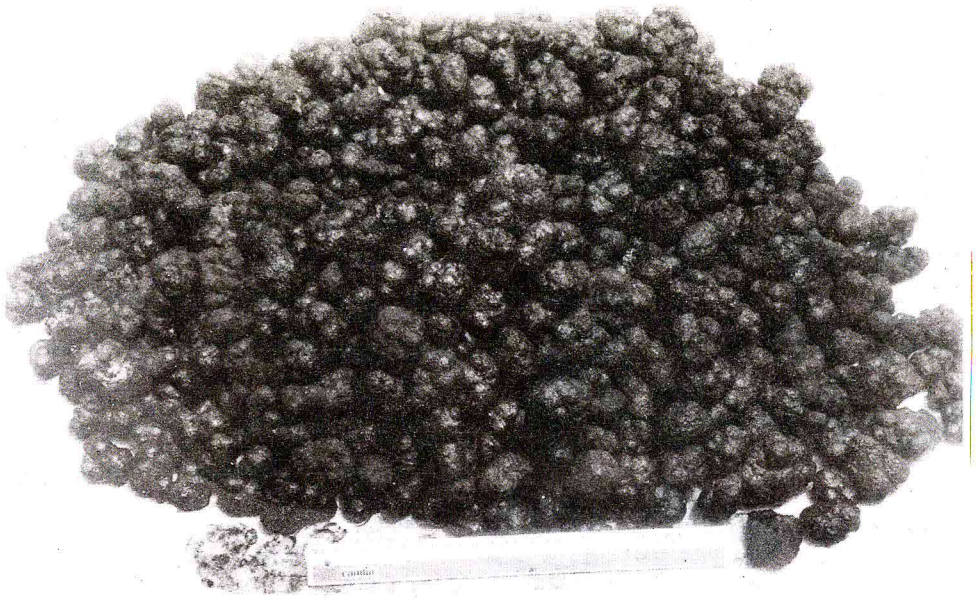

चित्र-1: द्रवचालित चूषण यंत्र द्वारा निकाले गये बहुधात्विक पिंड के ढेर

से समुद्रतल पर होने वाला वातावरणीय प्रभाव का मूल्यांकन करना कानूनी तौर पर आवश्यक था। इसी कारण बहुधात्विक पिंडों के खनन से उत्पन्न वातावरणीय दुष्परिणामों का अध्ययन करने के लिए 1995 में गोवा के समुद्र विज्ञान संस्थान में एक परियोजना तैयार की गयी। इस योजना के तहत 1996 में मध्य हिंद बेसिन के तीन संदर्भ (रेफरन्स) और एक परीक्षण (टेस्ट) क्षेत्र में बेस लाइन अध्ययन किया गया। 1997 में, यानि परियोजना के दूसरे भाग (सेकन्ड फेज) में, सोवियत संघ की युज्मोर्जिओलॉजिया जलपोत की मदद से परीक्षण क्षेत्र में द्रवचलित चूषण यंत्र से समुद्री तलछट का उर्ध्वनिलंबन एवं पुनर्वितरण किया गया। तलछट का उर्ध्वनिलंबन और पुनर्वितरण करने के पहले 17 और बाद में 17 मृदस्तंभ (बॉक्स कोर) एवं तलछट के नमूने एकत्रित किये और परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। द्रवचलित चूषण यंत्र द्वारा 1997 में समुद्री तल पर किया गया तलछट के खलबला (उत्प्लावन) को "इन्डेक्स" (इंडियन डीप सी एक्स्परिमेन्ट) प्रयोग कहा गया है। इस यंत्र द्वारा 9 दिनों में 580 टन सूखे तलछट से प्राप्त 6023 मी.^{3} तलछट का उर्ध्वनिलंबन और पुनर्वितरण किया गया। इस चूषण यंत्र द्वारा प्राप्त बहुधात्विक पिंड चित्र-1 और -2 में दिखाये गये हैं।

तुलनात्मक अध्ययन के लिए परीक्षण क्षेत्र में से कुल 10 मृदस्तंभ चुने थे। इस्तेमाल किया गया मृदस्तंभ का आकारमान 50 x 50 x 50 सेमी.^{3} था। दस में से तीन मृदस्तंभ (2, 3 और 5) परीक्षण पट्टिका क्षेत्र से, एक मृदस्तंभ (4) पट्टिका क्षेत्र के उत्तर-पश्चिम दिशा में, एक (6) पट्टिका के दक्षिण-पूर्व दिशा में, तीन (8,12 और 13) पट्टिका के उत्तर दिशा में, तथा बाकी दो (7 और 14) पट्टिका के दक्षिण दिशा सें लिये गये थे। 5300 मी. गहरे समुद्रतल से लाये गये मृदस्तंभ के तलछट को तुरंत अेकेलिक नलिका (लाईनर) से उपविभक्त कर दिया गया। इस प्रकार प्रत्येक मृदस्तंभ का ऊपरी 10 सेमी. का हिस्सा 2 सेमी. के मध्यांतर से अलग किया और बाकी के हिस्सों को 5 सेमी. के अंतर में बांटा गया। प्रयोगशाला में इन सभी नमूनों में से लवणता निकल वाने के लिए उन्हें ओवन (Oven) में 70^0 सें. तापमान पर सुखाया गया। तलछट के नमूनों में बालू (सैन्ड) की मात्रा जांचने के लिए 62 μ छलनी (सीव) का उपयोग किया गया तथापि, दुमट (सिल्ट) और मृदा (क्ले) की मात्रा पिपेट परीक्षण द्वारा निकाली गयी।

इन परीक्षणों से हमें निम्नलिखित बातें पता चलती हैं :-

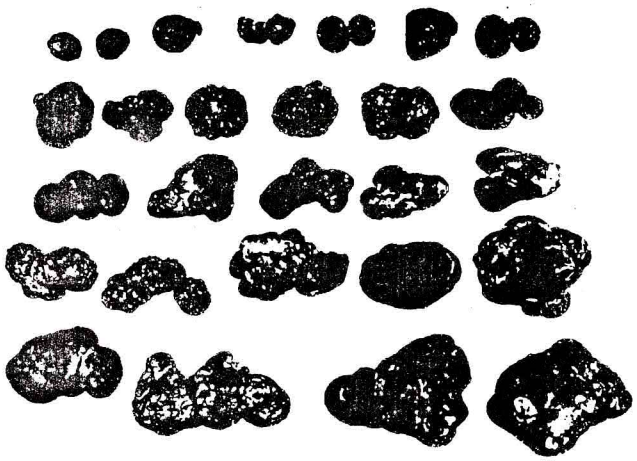

चित्र-2 : विभिन्न आकार के छोटे बड़े बहुधात्वक पिंड

1. तलछट की सतह (टेक्श्चर)

"इन्डेक्स" प्रयोग पूर्व तलछट के 120 में से 106 (88%) नमूने "मृदी दुमट" (क्लेयी सिल्ट) थे। प्रयोग के बाद परीक्षा पट्टिका की जगह 2 पर लिये 11% नमूने "दुमट" से "मृदी दुमट" (क्लेयी सिल्ट) में बदल गये। उसी तरह परीक्षा पट्टिका के बाहर उत्तर-पश्चिम दिशा के नमूने "मृदी दुमट" से "दुमटी मृदा" (सिल्टी क्ले) में बदल गये, मगर दक्षिण-पूर्व दिशा के नमूनों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। परीक्षण पट्टिका के उत्तर दिशा में लिये गये तीन मृदस्तंभों में और पट्टिका के दक्षिण दिशा के दो मृदस्तंभों के तलछट की ऊपरी सतह नहीं बदली।

परीक्षण पट्टिका की जगह 3 और 5 के नमूनों में कोई परिवर्तन न होने का कारण "दुमट" है जो तलछट उर्ध्वनिलंबित होकर भी वहीं रह गयी। उत्तर-पश्चिम दिशा में जगह 4 के नमूनों में "मृदी दुमट" का "दुमटी मृदा" में परिवर्तन होने का कारण "मृदा" (क्ले) में वृद्धि हो सकती है (चित्र-3)। "इनडेक्स" प्रयोग के बाद "मृदा" के कण परीक्षा पट्टिका से दूर उत्तर-पश्चिम दिशा में जगह 4 तक पहुंच गये (चित्र-4)। इस प्रकार द्रवचलित चूषण यंत्र द्वारा तैयार हुआ तलछट का पुच्छ परीक्षण पट्टिका के बाहर केवल उत्तर-पश्चिम दिशा में जगह 4 तक पहुंच गया।

2. बालू (सैन्ड)

तलछट को उर्ध्वनिलंबन एवं पुनर्वितरण करने के पश्चात पट्टिका को जगह 2 और 3 में ऊपर से 30 सेमी. तक के नमूनो में बालू की मात्रा में कमी दिखायी गयी। परीक्षण पट्टिका के उत्तर-पश्चिम दिशा में जगह 4 पर 6 सेमी. तक के नमूनों में बालू की मात्रा में 0.6% की वृद्धि दिखायी देती है। तथापि दक्षिण-पूर्व दिशा में जगह 6 में कोई बदलाव नहीं हुआ। परीक्षण पट्टिका की उत्तर दिशा में जगह 8 और 13 पर बालू की मात्रा में 0.4 से 2.5% की कमी दिखायी गयी मगर जगह 14 के नमूनों में बालू की मात्रा में कोई फर्क नहीं हुआ।

परीक्षण पट्टिका में तलछट के उर्ध्वनिलंबन के पश्चात लिये गये मृदस्तंभ के ऊपर से 8 सेमी. तक के नमूनों में केवल जगह 5 पर 1 से 1.5% की वृद्धि दिखायी गयी (चित्र-5)। यह वृद्धि तलछट के उर्ध्वनिलंबन से नीचे का तलछट ऊपर आने से हो सकती है। परीक्षण पट्टिका के उत्तर, उत्तर-पश्चिम, दक्षिण और दक्षिण-पूर्व स्थानों पर लिये गये मृदस्तंभ के नमूनों में बालू की मात्रा में कोई फर्क नहीं हुआ। इस तरह तलछट के उर्ध्वनिलंबन के पश्चात बालू मुख्य तौर से एक ही जगह उन्हीं स्थानों पर रही।

3. दुमट (सिल्ट)

तलछट को उर्ध्वनिलंबन करने के पश्चात परीक्षण पट्टिका की जगह 2 पर दुमट (सिल्ट) की 9 से 25% कमी तथा जगह 3 पर 6% और 5 पर 4 से 5% की वृद्धि दिखायी गयी। पट्टिका के उत्तर-पश्चिम दिशा में जगह 4 पर 4% की और दक्षिण-पूर्व स्थान 6 पर 5 से 9% की वृद्धि दिखायी देती है (चित्र-6)। वैसे ही उत्तर दिशा में जगह 8 पर 8% की, स्थान 12 पर 4% की वृद्धि हो गयी। दक्षिण दिशा में स्थान 7 पर 6% की वृद्धि दिखायी देती है और स्थान 14 पर 13% की वृद्धि दिखायी देती है।

परीक्षण पट्टिका के स्थानों पर हुई वृद्धि और कमी से यह ज्ञात होता है कि दुमट का प्रवाह स्थान 2 से 4 की तरफ और 2 से 6 की तरफ रहा। उसी प्रकार दुमट का

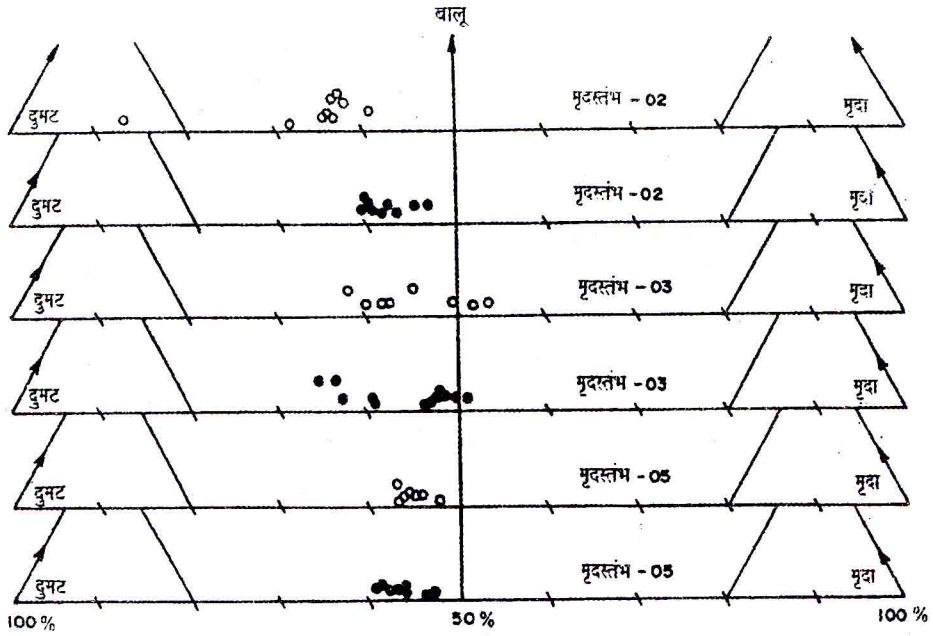

चित्र-3: बालू-दुमट -मृदा का तिकोना में परीक्षण पट्टिका के लिए तुलनात्मक अध्ययन;) तलछट उर्ध्वनिलंबन करने के पहले ● उर्ध्वनिलंबन के पश्चात

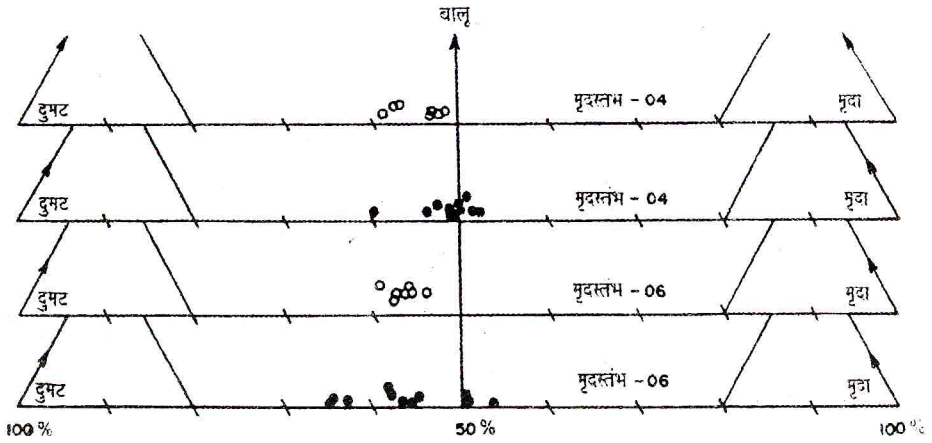

चित्र-4 : बालू-दुमट -मृदा का तिकोना में परीक्षण पट्टिका के बाहर उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व दिशा में तुलनात्मक अध्ययन (सभी चिन्ह चित्र-3 जैसे) ।

प्रवाह स्थान 2 से परीक्षण पट्टिका के उत्तर और दक्षिण दिशा में भी रहा । इससे यह ज्ञात होता है की तलछट के पुच्छ में दुमट का प्रभाव काफी रहा होगा । उर्ध्वनिलंबन के बाद तलछट के पुच्छ की दिशा 245^0 से 310^0 रही ।

4. मृदा (क्ले)

"इन्डेक्स" प्रयोग के लिए निकाले गये ऊपरी 0 से 10 सेमी. के नमूनों के अध्ययन से परीक्षण पट्टिका के स्थान 2 पर 27% की वृद्धि (चित्र-7) और स्थान 5 पर 3 से 4% की कमी दिखायी गयी । पट्टिका की उत्तर

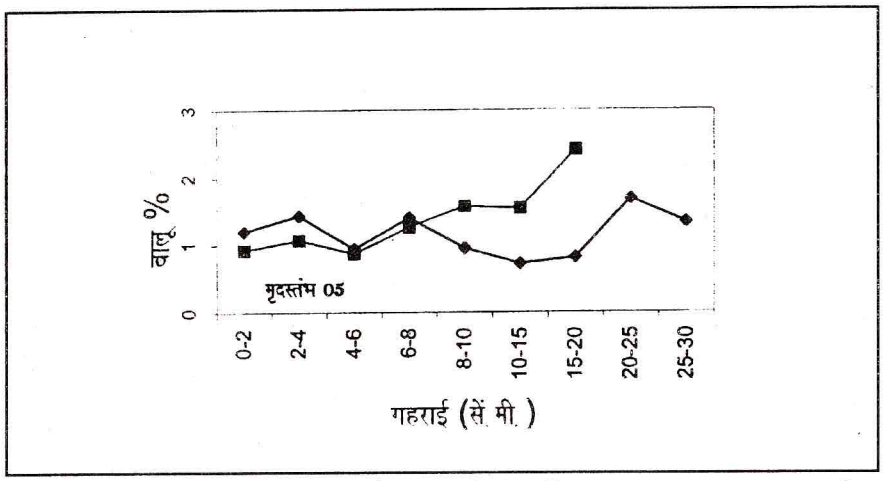

चित्र-5 : उर्ध्वनिलंबन के पश्चात परीक्षण पट्टिका में मृदास्तंभ 5 पर बालू की वृद्धि
▩ तलछट उर्ध्व-निलंबन करने के पहले ◆ उर्ध्वनिलंबन के पश्चात

दिशा में केवल स्थान 13 पर 6% और दक्षिण दिशा में स्थान 14 पर भी 2% की वृद्धि दिखायी देती है (चित्र-7)।

परीक्षण दक्षिण-पूर्व स्थान 2 पर हुई 27% की वृद्धि का कारण स्थान 3 और 5 से लायी गयी मृदा है। इस तरह तलछट के पुच्छ से मृदा का प्रवाह उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व (साधारण 2 किमी.) रहा, इससे यह निश्चित होता है। स्थान 3 और 5 से निकाले गये मृदस्तंभ के कारण वहां मृदा की मात्रा कम हो गयी, उसी प्रकार स्थान 13 पर हुई 13% और स्थान 14 पर की 6% वृद्धि यह दिखाती है की मृदा का प्रवाह केवल परीक्षण पट्टिका में ही नहीं किंतु पट्टिका के उत्तर और दक्षिण दिशा में भी रहा। इस प्रकार मृदा और दुमट का प्रवाह 200^0 से 300^0 दिशा में रहा।

5. प्रचुराकार (ग्राफिक मीन)

तलछट को उर्ध्वनिलंबन करने के पहले लिये गये मृदस्तंभ के नमूनों में प्राय: यह देखा गया कि मृदस्तंभ में नीचे की तलछट ऊपरी तलछट से अधिक सूक्ष्म है। इसलिए द्रवचलित चूषण यंत्र द्वारा समुद्री तलछट को उर्ध्वनिलंबन एवं पुनर्वितरण करने के पश्चात मृदस्तंभ के ऊपरी नमूनों में प्रचुराकार (मध्य आकार) (ग्राफिक मीन) में कणों की बढ़ोत्तरी होने से (अ) नीचे की तलछट का ऊपरी तलछट से मिलावट होना या (ब) सूक्ष्म कणों को नज़दीक की जगह से लाया जाना संभव लगता है।

परीक्षण पट्टिका में तलछट को उर्ध्वनिलंबन एवं पुनर्वितरण करने के पश्चात तलछट के प्रचुराकार (मध्य आकार) में स्थान 2 पर 0.6 से 0.9 तक और स्थान 5 पर 0.2 से 0.3 तक की बढ़ोत्तरी हो गयी (चित्र-8)। उत्तर-पश्चिम में स्थान 4 पर भी 0.4 की बढ़त हुई तथा दक्षिण-पूर्व में स्थान 6 पर सबसे अधिक (1.15) की वृद्धि दिखायी देती है (चित्र-9)। पट्टिका के उत्तर दिशा में कोई बदलाव नहीं हुआ मगर दक्षिण दिशा में स्थान 7 पर 0.2 की, और स्थान 14 पर 0.7 की वृद्धि दिखायी देती है।

इससे पता चला है की "इन्डेक्स" प्रयोग के कारण परीक्षण पट्टिका में नीचे के 30 सेमी. तक के तलछट की ऊपरी तलछट के साथ मिलावट हुई। परीक्षण पट्टिका में प्रचुराकार की वृद्धि स्थान 2 पर सबसे ज्यादा (0.9), स्थान 3 पर मध्यम (0.3), और स्थान 5 पर न्यूनतम (0.2) हुई। इस वृद्धि से साफ नजर आता है कि तलछट का पुच्छ मृदा जैसे कणों से परिपूर्ण था जो स्थान 2 से 5 की दिशा (पट्टिका क्षेत्र के दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम दिशा) में स्थान 4 की ओर बढ़ा। आम तौर पर तलछट की पुच्छ की दिशा 180^0 से 270^0 रही।

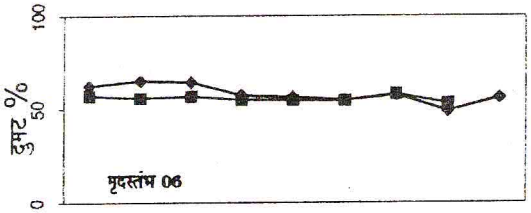

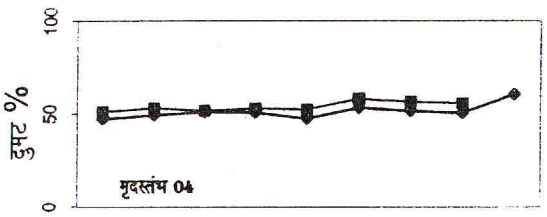

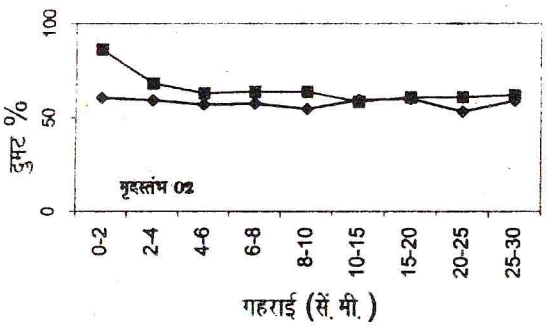

चित्र-6 : उर्ध्वनिलंबन के पश्चात दुमट में मृदस्तंभ 2, 4 और 6 पर वृद्धि
(सभी चिन्ह चित्र-5 जैसे)

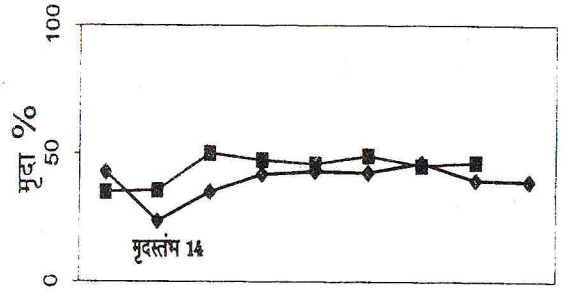

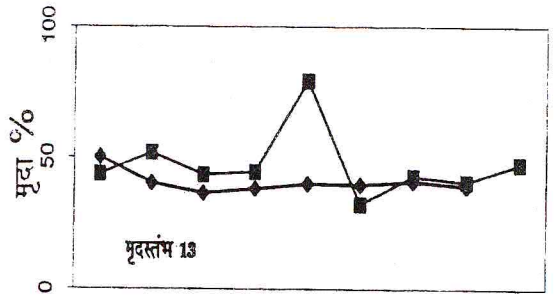

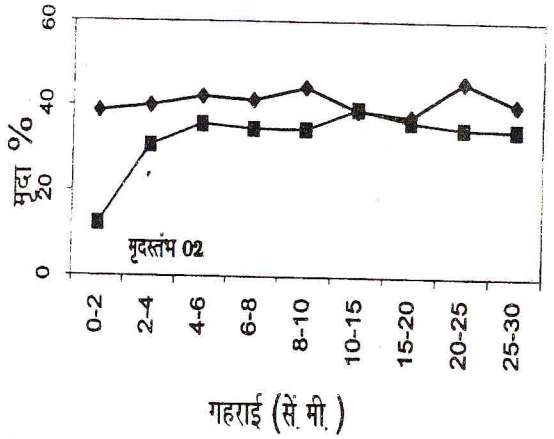

चित्र-7 : उर्ध्वनिलंबन के पश्चात मृदा में मृदस्तंभ 2, 13 और 14 पर वृद्धि
(सभी चिन्ह चित्र-5 जैसे)

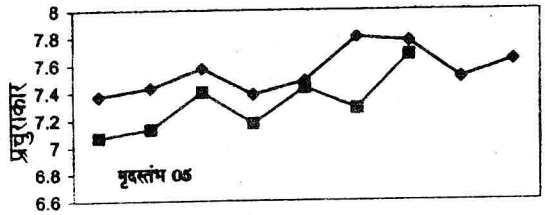

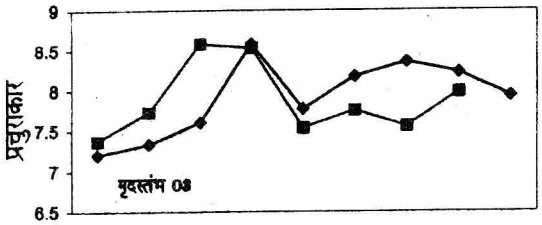

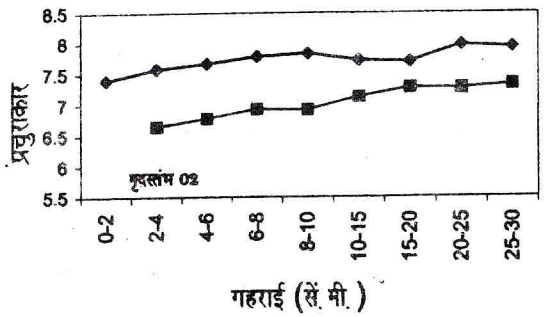

चित्र-8 : उर्ध्वनिलंबन के पश्चात प्रचुराकार में मृदस्तंभ 2 पर सबसे ज्यादा, 3 में मध्यम और 5 पर न्यूनतम वृद्धि (सभी चिन्ह चित्र-5 जैसे)

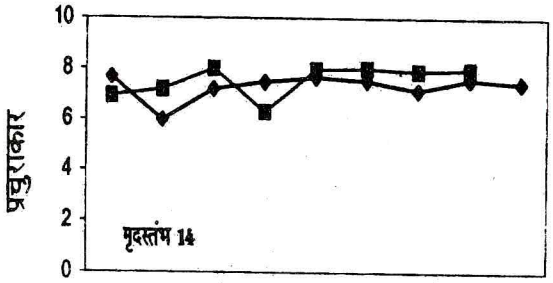

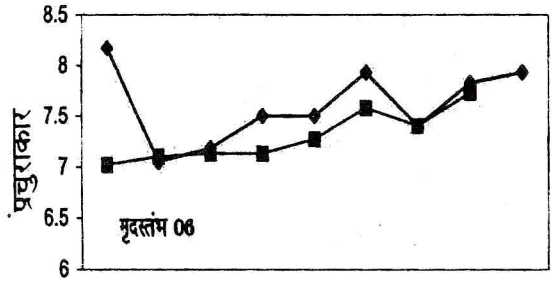

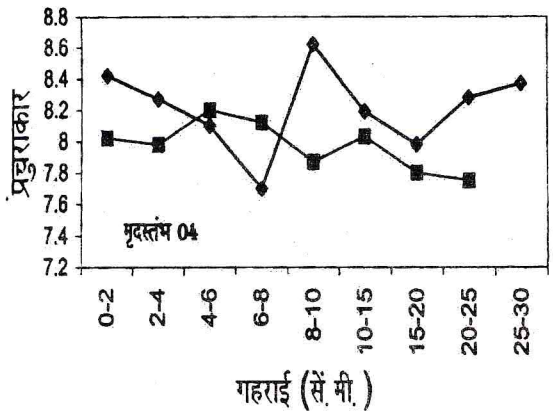

चित्र-9 : उर्ध्वनिलंबन के पश्चात प्रचुराकार में मृदस्तंभ 4, 6 और 14 पर वृद्धि (सभी चिन्ह चित्र-5 जैसे)।

मध्य हिंद बेसिन में किये गये "इन्डेक्स" प्रयोग से निकाले गये अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष नीचे दिये हैं ।

1) तलछट के उर्ध्वनिलंबन के पश्चात बालू मुख्य तौर से एक ही जगह उन्हीं स्थानों पर स्थिर रही ।
2) तलछट के पुच्छ में दुमट का प्रभाव काफी होता है और उर्ध्वनिलंबन के बाद तलछट के पुच्छ की दिशा 245^0 से 310^0 रही ।
3) मृदा का प्रवाह केवल परीक्षण पट्टिका में ही नहीं किंतु पट्टिका के उत्तर और दक्षिण दिशा में भी रहा । मृदा और दुमट का प्रवाह 200^0 से 300^0 दिशा में रहा ।
4) द्रवचलित चूषण यंत्र द्वारा तैयार किया गया तलछट का पुच्छ परीक्षण पट्टिका के बाहर केवल उत्तर-पश्चिम दिशा में जगह 4 तक पहुंच गया ।
5) मृदा की वृद्धि से पता चलता है कि "इन्डेक्स" प्रयोग के कारण परीक्षण पट्टिका में नीचे के 30 सेमी. तक की तलछट ऊपर आ गयी ।
6) प्रचुराकार की वृद्धि से महसूस होता है की तलछट का पुच्छ मृदा जैसे अत्यंत सूक्ष्म कणों से लथपथ था, जो पट्टिका क्षेत्र के दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम दिशा में स्थान 4 की ओर बहता गया । आम तौर पर तलछट की पुच्छ की दिशा 180^0 से 270^0 रही ।

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि समुद्री खनन से तैयार होनेवाले तलछट के पुच्छ की दिशा तलछट के कणों के अध्ययन से तय की जा सकती है । "इन्डेक्स" प्रयोग से मालूम पड़ता है कि परीक्षण पट्टिका में तलछट को चूषण पद्धति से उर्ध्वनिलंबन एवं पुनर्वितरण करने के पश्चात तलछट की सतह, मृदा की मात्रा और कणों के प्रचुराकार में काफी बदलाव होता है और तुलनात्मक अध्ययन से पुच्छ की दिशा भी तय की जा सकती है ।

विवरण से ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि परीक्षण पट्टिका में तलछट के अत्यंत सूक्ष्म कण (जैसे कि सूक्ष्म दुमट और मृदा) पानी में ही (सस्पेन्शन) काफी काल तक तैरते (निलंबित) रहे मगर बालू जैसे बड़े आकारवाले कण तलछट के उर्ध्वनिलंबन के बाद समुद्री तल पर शीघ्र वापस लौट आये । इस प्रयोग से प्राप्त निष्कर्षों की भविष्य में मध्य हिंद महासागर में स्थित बहुधात्विक पिंडिका क्षेत्र के खनन से उत्प्लावन (खलबला) मचानेवाले चूषण यंत्रों के तलछट पर होनेवाले प्रभाव को जानने में काफी सहायता हो सकती है ।

❑❑❑

(पृष्ठ 59 का शेष भाग...)

पुष्प निर्जलीकरण की विधियां एवं इसकी व्यावसायिक उपयोगिता

C. 100 ग्लास कन्टेनर के लिए (पुष्पसज्जित)	रुपए
1. पारदर्शी ग्लास कन्टेनर (100)	2,000
2. ग्लास डिशेज़ (100)	400
3. थर्मोकोल शीट (3) [50 x 100 सेमी, रु 15/-प्रति] [45-50 पीस/शीट(10 सेमी व्यास)]	45
4. सूखे फूल	400
5.सिनथेटिक रेजिन एडहेसिव [500 g]	100
6. वेलवेट पेपर (4 शीट)	20
7. इनेमल पेन्ट(250 ग्राम)	50
8. कुशल मजदूर	500
कुल योग = **3,515**	

100 ग्लास कन्टेनर (पुष्पसज्जित) का उत्पादन मूल्य 3,515

एक पुष्प सज्जित कन्टेनर का मूल्य	35.15
विक्रय मूल्य/कन्टेनर	60.00
लाभ/कन्टेनर	24.85
लाभ/100 कन्टेनर	**2485**

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उद्योग में अच्छा लाभ मिल सकता है ।

राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान वनस्पतियों को सही ढंग से सुखाने की कला और विज्ञान में प्रशिक्षण देता है । यह विधि रोजगार बढ़ाने तथा गांव वालों को, विशेषकर गांव की स्त्रियों को, अल्प समय का एक उत्पादन व्यवसाय प्रदान करने के कारण बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई है ।

❑❑❑

टिप्पणियां

1. ओज़ोन और वसुंधरा

यह निर्विवाद सत्य है कि ओज़ोन पर्त और हमारी धरती का ग़हरा रिश्ता है, चोली-दामन का रिश्ता है। हम ओज़ोन पर्त के अभाव में धरती नामक इस ग्रह की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। किंतु मानवीय गतिविधियों के कारण पृथ्वी का यह 'सुरक्षा कवच' जिस तरह से नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है, उससे तो ऐसा लगता है जैसे एक दिन हम सबके इस निवास स्थल का अस्तित्व रहेगा भी या नहीं ?

समताप मंडल (स्ट्रैटोस्फीयर) में स्थित ओज़ोन पर्त एक छतरी की भांति सूर्य की ख़तरनाक पराबैंगनी किरणों से पृथ्वी के समस्त जीव मंडल को सुरक्षित रखती है। वैज्ञानिक पिछले कई दशकों से चेतावनी देते आ रहे हैं कि क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFCs) और हैलोन (ऐसे क्लोरोफ्लोरो कार्बन जिनमें ब्रोमाइड विद्यमान रहता है) ओज़ोन पर्त को क्षति पहुँचाते हैं। क्लोरोफ्लोरो कार्बन का इस्तेमाल रेफ्रिजरेटरों जैसे प्रशीतकों, विलायकों, फोम के उत्पादों और एरोसॉल प्रणोदकों में तथा हैलोनों का उपयोग आग बुझाने वाले उपकरणों (अग्निशामकों) में होता है।

वैसे यहां यह जान लेना अच्छा रहेगा कि क्लोरोफ्लोरो कार्बनों का प्रभाव कई हज़ार गुना बढ़कर होता है। क्लोरोफ्लोरो कार्बन से मुक्त हुए क्लोरीन के एक परमाणु में इस प्रकार की रासायनिक क्रियाओं की कड़ियाँ उत्पन्न कर सकने की क्षमता होती है जिससे ओज़ोन के एक लाख (1,00,000) अणुओं का रिक्तीकरण हो सकता है। इससे आप सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि न्यून मात्रा में भी क्लोरोफ्लोरोकार्बन गैसों का प्रभाव कितना दूरगामी हो सकता है।

जिस स्थायित्व वाले और लंबी अवधि तक सुरक्षित रहने वाले गुणों के कारण सीएफसी का इस्तेमाल फुहारों (स्प्रेयर्स) और अग्निशामकों में किया जाता है, उन्हीं गुणों के कारण ही वह ओज़ोन की पर्त को क्षति भी पहुंचाता है। इन गैसों की विशेषता यह है कि ये समताप मंडल में अवस्थित रहकर विस्तृत क्षेत्र में फैल जाती हैं।

क्लोरोफ्लोरो कार्बन गैसों के उत्पादक देशों में चीन शीर्ष पर है। भारत का स्थान चीन के बाद ही दूसरे नंबर पर है। एक अनुमान के अनुसार भारत 22,000 टन से अधिक सी एफ सी गैसों का उत्पादक है। यह मात्रा (आर्टिकल 5 देशों में) सी एफ सी गैसों के कुल उत्पादन का 12 प्रतिशत है। आर्टिकल 5 देशों में कोई भी ऐसा विकासशील देश हो सकता है, जो 'मॉन्ट्रियल प्रोटोकोल' का हस्ताक्षरता देश हो। इन देशों में सी एफ सी गैसों और हैलोनों की खपत प्रतिव्यक्ति 0.3 किलोग्राम से कम होनी चाहिए।

वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि यदि 'मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल' पर हस्ताक्षर न हुए होते तो आज सी एफ सी जैसी ओज़ोन पर्त को क्षति पहुँचाने वाले रसायनों की जितनी मात्रा का उत्पादन हो रहा है, उसकी तुलना में पांच गुना अधिक उत्पादन निश्चित रूप से हो रहा होता। यही नहीं, इसके परिणामस्वरूप सूर्य से धरती पर आने वाली पराबैंगनी किरण-बी का स्तर दो गुना हो गया होता। किंतु प्रसन्नता की बात है कि अंततः लोगों की समझ में धरती को बचाने की बात पुष्ट हो रही है और ओज़ोन पर्त को क्षति पहुँचाने वाले रसायनों का उत्पादन अब कम होता जा रहा है। किंतु ध्यान देने वाली बात यह है कि जहाँ एक ओर सी एफ सी का स्थान हाइड्रोक्लोरोफ्लोरो कार्बन (एच सी एफ सी) तेज़ी से ले रहे हैं। पहले ऐसा माना गया था कि ओज़ोन की पर्त को एच सी एफ सी से हानि नहीं होगी। किंतु नये शोधों से यह विचार ग़लत सिद्ध हो गया है। इनसे होने वाली क्षति सी एफ सी से होने वाली क्षति का मात्र 10 प्रतिशत ही है, फिर भी निरापद तो नहीं ही है।

पराबैंगनी किरणों का बढ़ा हुआ विकिरण, विशेष रूप से पराबैंगनी-बी किरणें मानव स्वास्थ्य को बुरी तरह

से प्रभावित करती हैं । इसके प्रभाव से त्वचा कैंसर, मोतिया बिंद के रोगियों की संख्या में वृद्धि और शरीर की रोगरोधी क्षमता का ह्रास देखने में आ रहे हैं । इनमें से अधिकतर लक्षण पहले वन्यजीवों में देखने में आये हैं । आमतौर से वन्य जीवों का स्वास्थ्य धरती नामक इस उपग्रह के स्वास्थ्य का परिचायक होता है । सूर्य का पराबैंगनी-बी किरणों का विकिरण समुद्री पारितंत्र में पादप-प्लवकों (फाइटोप्लैंकटॉन्स) की गतिशीलता और दिशा ज्ञान को प्रभावित करता है । इसके परिणामस्वरूप पादप प्लवकों में जीवित रह सकने की क्षमता घट जाती है । मछलियों, झींगों, केकड़ों उभयचरों और जीवों की जनन क्षमता और डिंभकों के विकास में विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । पोषकों का वितरण, जैव-सामंजस्य और विकासीय प्रावस्थाओं का समय जैसी विकास संबंधी प्रक्रियाएं प्रभावित होती हैं । और तो और, इसी के साथ ही साथ पादप जातियों (स्पीशीज़) की रचना, पादप रोग और जैव-रासायनिक चक्रों में उलझाव उत्पन्न हो जाते हैं ।

कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन के ऑक्साइड गैसें, जो 'हरित पौध गृह प्रभाव' के लिए उत्तरदायी हैं, भी ओज़ोन पर्त के क्षय से जटिल रूप से जुड़ी हुई हैं। इस प्रकार ओजोन पर्त का क्षय अति जटिल समस्या है, फिर समस्या का समाधान क्या है ?

16 सितंबर ओज़ोन पर्त के संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय दिवस घोषित हुआ है । अतएव यह दिन सारे संसार में, ओज़ोन पर्त को क्षति पहुँचाने वाले रसायनों के इस्तेमाल को धीरे-धीरे कम से कम करने का संकल्प दिवस है । इस संबंध में भारत सरकार 2010 तक ओज़ोन पर्त को क्षति पहुँचाने वाले रसायनों के प्रयोग को पूरी तरह से समाप्त कर देने के लिए अपनी वचनबद्धता पर दृढ़ है, कृत संकल्प है ।

यहाँ एक सहज-सा प्रश्न उठता है कि एक सजग नागरिक के रूप में हमारा क्या दायित्व है ? तो हमारा दायित्व या हमारा संकल्प यह होना चाहिए कि हम धीरे-धीरे उन सभी उपकरणों का प्रयोग बंद कर दें जिनमें सी एफ सी या एच सी एफ सी का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए एयर कंडीशनरों, रेफ्रिजरेटरों, एरोसॉल फुहारों, थर्मोकोल के गिलासों अथवा पैकिंग के लिए थर्मोकोल आदि पर निर्भर रहने की आदत छोड़ दें । स्मरण रहे ये सभी चीजें आराम तो देती हैं, किंतु समस्या को जन्म भी यही देती हैं । आज हम विकास की अंध दौड़ में शामिल तो हो गये हैं, किंतु थोड़ा रुककर जरा ध्यान से देखिए - ओज़ोन पर्त का छिद्र कहीं हमारी इस बात के लिए खिल्ली तो नहीं उड़ा रहा है, कि मानव अपनी बुद्धि के अभिमान में विनाश की ओर तो नहीं जा रहा है ?

प्रेमचंद्र श्रीवास्तव
विज्ञान परिषद प्रयाग, महर्षि दयानंद मार्ग,
इलाहाबाद - 211 002

2. फ्लोजिस्टान

आइए, बात करते हैं एक ऐसे तत्त्व की जो कभी था ही नहीं लेकिन इस काल्पनिक तत्त्व ने अठारहवीं सदी के रसायनज्ञों को बहुत छलावे में रखा । हुआ कुछ यूँ कि जब ऐंपीडोकल्स ने लकड़ी को जलते देखा तो उसके दिमाग में एक विचार कौंधा कि लकड़ी से जलने के बाद अवश्य ही कोई ऐसी 'चीज' बाहर निकल गयी है जिससे कि वो जलने के बाद बहुत ही हल्की, रोयेंदार राख बन गयी है । इस विचार से वह बहुत प्रभावित हुआ । इस विचार को आमतौर पर मान लिया गया कि जलने (दहन) के दौरान पदार्थ अपघटित हो जाता है और उससे कुछ बाहर निकल जाता है जिससे कि पदार्थ हल्का रह जाता है (दहन के बाद) ।

जर्मन रसायनज्ञों जोहान बेचर एवं जोर्गस्टाल ने 1702 में इस बात से प्रभावित होकर एक सिद्धांत सामने रखा । इस सिद्धांत के अनुसार सभी दाहक पदार्थों (Combustible Materials) में एक सर्वनिष्ठ तत्त्व फ्लोजिस्टान (Phlogiston) होता है जोकि पदार्थ के दहन के दौरान बाहर निकल जाता है । इस सिद्धांत के अनुसार

(क) धातुओं को जब (उच्च ताप पर) गर्म किया जाता है तो इनसे 'फ्लोजिस्टान' बाहर निकल जाता है और वे कैल्क्स (Calx) बन जाती हैं । (आज हम इनको ऑक्साइड्स के रूप में जानते हैं) ।

(ख) कैल्क्स को जब चारकोल के साथ गर्म किया जाता है तो यह 'फ्लोजिस्टान' को पुनः अवशोषित कर धातु बन जातो हैं । चारकोल इसलिए आवश्यक है क्योंकि मूल फ्लोजिस्टान तो वातावरण में बिखर कर खो गया है ।

(ग) इसलिए चारकोल में फ्लोजिस्टान अत्यधिक मात्रा में होना चाहिए ।

इस सिद्धांत को प्रायः मान लिया गया । इतना ही नहीं वरन् बाकी कई सिद्धांतों का प्रतिपादन भी इस सिद्धांत के आधार पर किया जाने लगा । जैसे कि प्राणियों की श्वसन क्रिया एक ऐसी शोधन क्रिया है जिसमें 'फ्लोजिस्टान' बाहर निकलता है । इसीलिए, एक बंद बेल-जार में चूहा कुछ देर बाद मर जाता है क्योंकि उसके आसपास की हवा ने अधिकतम संभव फ्लोजिस्टान शोषित कर लिया है ।

अगर हम द्रव्यमान (एवं ऊर्जा) संरक्षण के नियम को ताक पर रख दें तो यह सिद्धांत हमें आज भी छलावे में डाल सकता है - धातुओं का दहन के बाद कैल्सेस (Calces) बनकर हल्का होना ।

फ्रांस के वैज्ञानिक जीन रे ने जब यह प्रदर्शित किया कि टिन धातु दहन के बाद भारी हो जाती है न कि हल्की, तो तत्कालीन रसायनज्ञों ने इस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया; क्योंकि द्रव्यमान (अथवा भार) पर तब इतना विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था । इस प्रकार 'रे' के कार्य की सार्थकता कहीं दब गयी । 'स्टाल' ने 1723 में 'रे' के कार्य को फ्लोजिस्टान सिद्धांत के अनुरूप ही बताया । उनके अनुसार - धातु दहन के बाद कैल्सेस बनकर यदि भारी भी हो जाती है, तो ये फ्लोजिस्टान सिद्धांत तो नकारती नहीं, उल्टे इस सिद्धांत की पुष्टि करती हैं । क्योंकि फ्लोजिस्टान हवा से हल्की है और जब यह पदार्थों के साथ संयुक्त होती है तो उन्हें ऊपर उठाती है अर्थात उन्हें हल्का करती है । इस प्रकार एक पदार्थ जिसमें से फ्लोजिस्टान निकल चुका है, अवश्य ही भारी होगा ।

इसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कि जब हाइड्रोजन की खोज हुई तो इसे शुद्ध फ्लोजिस्टान के प्रथम निर्माण की संज्ञा दी गयी ।

आइए, अब बात करते हैं कि इस मिथ्या सिद्धांत को किसने और कैसे भंग किया । लेवॉइज़ियर (1743-1794) ने पाया कि जब पारा कैल्क्स (मरक्यूरिक कैल्क्स) को गर्म किया जाता है तो पारा मिलता है एवं एक गैस निकलती है । तब उसने यह भी प्रदर्शित किया कि जब इस पारे को फिर से कैल्क्स बनाते हैं तो इस गैस का उतना ही माप (आयतन) पुनः शोषित होता है और उतना ही भार बढ़ता है जितना कि क्षय हुआ था । ध्यानपूर्वक द्रव्यमान के तुलनात्मक अध्ययनों (प्रयोगों से) द्वारा लेवाइज़ियर ने यह सुझाव रखा कि दाहक पदार्थ जब जलते हैं तो ऑक्सीजन लेते हैं, इस प्रकार से उनका भार ऑक्सीजन जुड़ने से बढ़ता है (लेवॉइज़ियर ने ही इस गैस को ऑक्सीजन का नाम दिया) । लेवॉइज़ियर ने यह भी प्रदर्शित किया कि लकड़ी, सल्फर (गंधक), फास्फोरस, चारकोल एवं अन्य पदार्थों के दहन के बाद जो गैसें बनती हैं उनका भार ठोस पदार्थों (जिनको जलाया गया है) के भार से हमेशा ही अधिक होता है । फ्लोजिस्टान सिद्धांत के प्रतिपादकों को लेवॉइज़ियर का यह तर्कसंगत जवाब था -

(क) धातुएं हवा में उपस्थित ऑक्सीजन से संयोजित हो कैल्सेस बनाती हैं जो कि ऑक्साइड हैं ।

(ख) कैल्क्स को जब चारकोल के साथ गर्म किया जाता है तो चारकोल कैल्क्स से ऑक्सीजन को निकालती है जिससे कि वापस धातु मिलती है एवं एक गैस उत्पन्न होती है । जिसको बद्ध-वायु (Fixed air - CO_2) नाम दिया गया ।

(ग) चारकोल धातु से संयुक्त नहीं होता अपितु धातु कैल्क्स में उपस्थित ऑक्सीजन को बाहर निकालता है ।

लेवॉइज़ियर इस प्रकार प्रथम ऐसे वैज्ञानिक (रसायनज्ञ) थे जिन्होंने द्रव्यमान संरक्षण पर ध्यान दिया। आज वे इस द्रव्यमान संरक्षण नियम के प्रतिपादक कहे जाते हैं, जो पूरे मात्रात्मक रसायन विषय का आधार है। लेवॉइज़ियर ने अपने ग्रंथ Traité Elementaire de Chimié जिसे उन्होंने 1789 में प्रकाशित करवाया, में लिखा- "हमें इसे एक बिलकुल साफ स्वप्रमाणित सत्य की तरह लेना चाहिए कि कला एवं प्रकृति की क्रियाओं में कुछ उत्पन्न नहीं होता, बल्कि प्रयोगों से पहले एवं बाद में पदार्थों की मात्रा समान रहती है।..."

लेवॉइज़ियर ने इस प्रकार फ्लोजिस्टान सिद्धांत की धज्जियां उड़ा दीं।

कुलवंत सिंह
वैज्ञानिक अधिकारी (ई), पदार्थ संसाधन प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

3. तुलसी के तीन प्रकार

भारत में तुलसी का बड़ा महत्त्व है। यह घर-घर में उगायी जाती है। इसे पवित्र माना जाता है तथा इसकी पूजा की जाती है। तुलसी बहुत सुगंधित तथा गुणकारी होती है। तुलसी के तीन प्रमुख प्रकार हैं :-

1) घरेलू तुलसी (ओसियम सेक्टम) :- यह काली तथा सफेद दो प्रकार की होती है। इसके पत्तों में वाष्पशील तेल पाया जाता है जिसमें 71 प्रतिशत यूजीनॉल, 20 प्रतिशत यूजीनॉल मिथाइल ईथर व 3 प्रतिशत कार्वाकोल होता है। इसमें कीटाणुओं को नष्ट करने की अनोखी व अचूक क्षमता होती है। तुलसी में ट्रेनिन, सैवोनिन, ग्लाइकोसाइड, एल्केलाइड्स जैसे रसायन भी पाये जाते हैं। तुलसी मलेरिया, शिशु रोग तथा चर्मरोग में लाभदायक है। इसकी चाय भी पी जाती है।

2) वन-तुलसी (आरिगेनम मेजोराना) :- यह शीतल कड़वी तथा बहुत खुशबूदार होती है। वनों में स्वत: उगती रहती है। यह कफ, वात, पित्त विकारों में लाभदायक है। खुजली, कृमि व विषनाशक भी है।

3) कपूर तुलसी (ओसीयम किली-मेंडिस केरियम) :- यह पर्वतीय क्षेत्र में पायी जाती है। इसकी खेती आर्थिक लाभ पहुंचाने वाली होती है क्योंकि इसका उपयोग साबुन, मंजन, तेल आदि में किया जाता है। किसान यदि इस तुलसी की खेती करें तो अच्छा धन अर्जित कर सकते हैं।

तीनों प्रकार की तुलसी से वातावरण शुद्ध होता है, अत: तुलसी के पौधे अवश्य लगाने चाहिए।

मोहन चंद्र कबड्वाल
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय-मुक्तेश्वर,
मुक्तेश्वर, कुमाऊँ - 263138 (नैनीताल)

प्रिय पाठक 'वैज्ञानिक' का यह अंक आपको कैसा लगा। कृपया अपनी सम्मतियां और अपने सुझाव हमें अवश्य लिख भेजें। हमें आपके पत्रों का इंतजार रहेगा।

– संपादक

भूकंप और 'वैज्ञानिक'

पेड़ों की गिनती मत कर
तुझे आम खाने से काम ।
भूकंपों को तो प्यारे
समझ गुठलियों के भी दाम ।।
यह मत पूछ कि आज बचीं
कितनी गायें, भैंसे या भेड़ ।
वन संरक्षक के रहते
कितने बचे वनों में पेड़ ।।
भूमि स्खलन से भूकंपन
यह बेसुरी तान मत छेड़ ।
रट सकता है तो रट ले
रिक्टर स्केल, प्लेट्स के नाम ।।
चिंता मत कर, धड़, धड़, धड़
यदि गिर जायें तेरे गेह ।
सब ग्रंथों का सार यही-
अमर आत्मा, नश्वर देह ।।
दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता
कालीकट, चेन्नई या लेह ।
लेट ताश के महलों में
प्यारे करता रह आराम ।।

भूकंपों से डरने की
नहीं जरा सी भी है बात ।
भूकंपों को तो मानो
परिवर्तन, जैसे दिन-रात ।।
डूबा लवण कच्छरण का...?
ले मीठे जल की सौगात ।
गुठली के भी दाम मिले
और दाम से निकले आम ।।

रमेश कुमार शर्मा
6/134 मुक्ता प्रसाद नगर,
बीकानेर (राज.) - 334 004

पारस पत्थर

गुणवत्ता यानी क्वालिटी कहते हैं मुझे
संस्थान हो या व्यापार, अपनाइए मुझे ।
करिए योजनाबद्ध हो कर हर कार्य
प्रोसीज़र व चेकलिस्ट हो अनिवार्य
प्लान-डू-चेक-एक्ट का करिए पालन
रिकार्ड रखने में रहे सदैव अनुशासन ।
संरक्षा सुरक्षा को दें प्राथमिकता
आई एस ओ - 14001 है आज की आवश्यकता
मुझे अपनाने से होंगे लाभ ही लाभ
उत्पादकता में वृद्धि होगी, आर्थिकी में होगा लाभ
मेन्टेनेन्स में कम समय लगेगा
स्पेयर्स का खर्च होगा कम
उच्चकोटि के उत्पाद से ग्राहक होंगे संतुष्ट
शिकायतें कम होने लगेंगी, नहीं होगा कोई कष्ट
गुणवत्ता यानी क्वालिटी तो हूँ मैं ऐसा पारस पत्थर
लोहे को कंचन बना दूंगी
चाहे व्यवसाय हो या चाहे घर, मेरा कोई विकल्प नहीं
अपनाने में कोई संकोच नहीं ।
गुणवत्ता के दीपक से होगा चहुँ ओर प्रकाश
हानि होगी कभी नहीं, मिलेगा लाभ ही लाभ
इसलिए बंधु !
अपनाइए मुझे
अंधेरी अमावस्या को बदलिए
उज्ज्वल पूर्णिमा में
आई एस ओ - 9001 का जलाइए दीपक,
आर्थिक विकास प्रगति की ओर बढ़ाइए कदम
अपनाएँगे ना, मुझे आश्वासन दें, पूरा भी करें
जी हां मैं गुणवत्ता हूँ
यानी क्वालिटी !

दिलीप भाटिया
टाईप 5 / 5, अणुकिरण,
रावतभाटा (कोटा-राजस्थान) - 323 307

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केंद्र से :

1. कांच और धातु की संधियां (सील)

कांच और धातु के जोड़ों की कई वैज्ञानिक व व्यावहारिक अनुप्रयोगों में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उपग्रहों में लगे इलेक्ट्रॉनिक सूक्ष्मपरिपथों (माइक्रो सर्किटों), सूक्ष्म निम्नतापीय शीतलकों / क्रायोस्टेटों / या तापीय आयनन संहति (थर्मल आयोनाइजेशन मास) स्पेक्ट्रोमीटर के फिलामेंट निकायों को वायुरुद्ध (हर्मेटिक) रूप से सील करने में कांच-धातु की संधियों (जोड़ों) का विशेष महत्व होता है। कई अवसरों पर इलेक्ट्रॉनिक परिपथों को नमी व अन्य संक्षारक परिवेश (एम्बियंट) से बचाना पड़ता है ताकि वे स्थिरता (स्टेबिलिटी) से, पुनः प्राप्यता (रिप्रोड्यूसिबिलिटी) से लंबे काल तक ठीक प्रकार से कार्य कर सकें। इसके अलावा, कई विद्युत व इलेक्ट्रॉनिक तकनीकी अनुप्रयोगों में ऐसे दो कक्षों के मध्य जिनमें दीवार के एक तरफ तो सामान्य परिवेश व दूसरी ओर अत्यधिक निर्वात या उच्च दाब होता है, विद्युत संबंध स्थापित करना पड़ता है। ऐसे सब अनुप्रयोगों में विभिन्न प्रकार के कांच-धातु जोड़ों द्वारा ही, जिन्हें धातु के बने खोलों / आच्छादनों (हाउसिंग) पर बनाया जाता है, समस्या का हल होता है।

इस तरह के किसी अनुप्रयोग में इस्तेमाल की जाने वाली कांच-धातु संधि, सामान्यतः धातु के एक बाहरी भाग और कांच के एक आधार पर स्थित एकल या कई धातु-पिनों की बनी होती है। बाहरी धात्वीय भाग व कांच सहित पिनों के स्पर्श क्षेत्र (कांटेक्ट एरिया) का इस्तेमाल निर्वात / दाब जोड़ अंतरापृष्ठ (सीलिंग इंटरफेस) के रूप में होता है। जहां धात्वीय पिनें विद्युत संबंध स्थापित करने में सहायक होती हैं वहीं कांच अच्छे कुचालक का कार्य करता है। संधियां दोनों प्रकार की हो सकती हैं : 1. धातु व कांच के एक समान तापीय प्रसार गुणांक (α) वाली या 2. ऐसी संरचना वाली कि कांच पर सिर्फ संपीडन (कंप्रेशन प्रतिबल) ही उत्पन्न हो। कांच-धातु संधियों से संबंधित महत्वपूर्ण प्राचल निम्नवत हैं :

कुचालन प्रतिरोध (इंसुलेशन रेजिसटेंस), फ्लेश ओवर वोल्टेज, विद्युत प्रवाह क्षमता, वायुरुद्धता, तापीय भार क्षमता (थर्मल लोड केपेसिटी), दाब भार क्षमता (प्रेसर लोड केपेसिटी), यांत्रिकी संक्षारण प्रतिरोध, टांका लगाने की सुगमता (सोल्डरेबिलिटी) आदि। कई सामरिक अनुप्रयोगों में आमापी संबंधी कठिन सीमाओं का भी ध्यान रखना पड़ता है।

तकनीकी भौतिकी व प्रोटोटाइप इंजीनियरींग प्रभाग (टी पी एंड पी ई डी), भा. प. अ. केंद्र, ने अत्यधिक परिशुद्धता वाले कई बहु-पिनों की कांच-धातु सीलों / पैकेज देश में ही विकसित किये हैं। ये दोनों प्रकार के हैं : समान तापीय प्रसार गुणांक व असमान तापीय प्रसार गुणांक वाले। इनके विकास से जुड़े कई चरण हैं, जैसे :

(i) कांच-गुट्टिकाएं, धातु-पिनों, कोवार / स्टेनलेस स्टील के कपों / पट्टिकाओं व ग्रेफाइट जिगों को तैयार करना।
(ii) धात्वीय भागों की रासायनिकी स्वच्छता करना,
(iii) धात्वीय भागों पर ऑक्साइड पर्तों (लेयरों), को बनाना।
(iv) संधि के विभिन्न हिस्सों को जोड़ना।
(v) संधि का संविरचन (फेब्रिकेशन) व अनीलन तथा
(vi) संधि की जांच व परीक्षण।

कोवार कपों / स्टेनलेस स्टील की प्लेटों का संविरचन कंप्यूटर नियंत्रित आंकिक (सी एन सी) मशीन द्वारा किया जाता है ताकि पुनः उत्पादन में आमापी यथार्थता बनी रहे। धातु-पिनें, कप व प्लेटों को ग्रेफाइट की जिगों पर लगाया जाता है, जो उच्च घनत्व (8.5 - 9 ग्रा / मिमी.^{3}) वाले ग्रेफाइट से बनायी जाती हैं। धातु के स्वच्छ किये गये भागों को गीली हाइड्रोजन में करीब 950^0 सें. ताप पर उपचारित कर, उन पर वांछित मोटाई की ऑक्साइड पर्त उत्पन्न की जाती है। संधि का संविरचन नियंत्रित निष्क्रिय वातावरण में किया जाता है। संधि बन जाने पर उसे 560^0 सें. पर लगभग

30 मिनटों तक अनीलित किया जाता है ।

बुदबुदों / सूक्ष्म छिद्रों और कांच में उत्पन्न सूक्ष्म -दरारों (माइक्रो-क्रेकों) की उपस्थिति ज्ञात करने के लिए सभी सीलों का सूक्ष्मदर्शी द्वारा निरीक्षण किया जाता है । तब हीलियम रिसाव सूचक (लीक डिटेक्टर) द्वारा रिसाव की जांच की जाती है । कोवार से बने कपों / पिनों को संक्षारण से बचाने के लिए उन पर सोना (Au) या निकिल (Ni) की पर्त चढ़ाई जाती है ।

टी पी एंड पी ई डी द्वारा संविरचित विभिन्न प्रकार की संधियों में से जो तीन भिन्न-भिन्न संरचनाओं की संधियां हाल ही में विकसित की गयी हैं उनके चित्र द्वितीय आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित किये गये हैं ।

चित्र-1 की 44 पिनों वाली संधि का विकास इसरो (ISRO), बैंगलोर के लिए किया गया । सूक्ष्म-परिपथ को सुरक्षित बंद करने हेतु इसकी आवश्यकता थी ।

चित्र-2 में दर्शायी गयी सील घनावस्था प्रयोगशाला, दिल्ली हेतु विकसित की गयी है । 76 पिनों वाली यह सील भी समान तापीय प्रसार गुणांक वाली है ।

चित्र-3 में दर्शित सील विशेषत: तापीय आयन संहति स्पेक्ट्रोमीटर (TIMS) में तीन फिलामेंटों लगाने हेतु बनायी गयी है । इस यंत्र का निर्माण टी पी एंड पी ई डी ने कार्प (KARP), कल्पाक्कम के लिए किया है । यह असमान तापीय प्रसार गुणांक वाली सील है ।

चित्र-1 व चित्र-2 में प्रदर्शित सीलों को उनके प्रयोगकर्ताओं की स्वीकृति पाने के लि विश्वसनीयता के कई कठिन परीक्षणों से गुजरना पड़ा । इन परीक्षणों में, वैक्यूम इंटेग्रिटी (रिसाव दर 10^{-10} std cc/s), इंसुलेशन रजिस्टेंस (> 1000 M Ω), 45 डिग्री पर प्रत्येक पिन को मोड़ना और पूर्व स्थिति पर वापस लाना (लीड फटिग टेस्ट), 77 से 400 के. /तापक्रम साइक्लिंग, कंपन परीक्षण (50 ग्राम, 20 से 2000 Hz, तीन अक्षीय) शामिल हैं । प्रभाग द्वारा निर्मित ये सीलें इन परीक्षणों पर खरी उतरी हैं । अब ज्यादा संख्या में इनको बनाने के प्रयास चल रहे हैं । TIMS में प्रयुक्त सीलें तो अब ज्यादा तादाद में बनायी जा भी रही हैं ।

डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला
बी-12 गीतांजली, प्लॉट-52,
सेक्टर - 17, वाशी नयी मुंबई

विज्ञान कविता

भारी-पानी

हाइड्रोजन न्यूक्लियस न्यूट्रॉन पाकर ड्युटीरियम बनता है,
ऑक्सीजन संयोग से जिसका भारी-पानी बनता है

भारी-पानी बिन-अवशोषण न्यूट्रॉन-गति कम करता है,
इसीलिए वह सब से अच्छा मंदक माना जाता है

रासायनिक गुणों में भारी-पानी है पानी के समान
घनत्व आदि भौतिक गुणों से है उसकी अपनी ही पहचान

भारी पानी जल जैसा ही है पर भारी उससे दशांश
प्रकृति में जल में ही वह मिलता है प्रमाण में अत्यल्पांश

भारी पानी पृथक्करण का कठिन है, फिर भी कुछ हैं विधान,
भाप-शीतलन, विद्युत-श्लेषण, रासायनिक विधान हैं प्रधान

भाप-शीतलन फलित जल में भारी-पानी कुछ ज्यादा है,
विद्युत-श्लेषण शेष जल में भी उसकी मात्रा ज्यादा है

भारी-पानी उत्पादन में हमने नाम कमाया है,
स्वनिर्भरता पाकर, उसको विदेशों को दे पाया है

भारी-पानी परमाणुभट्टी में मंदक का काम करता है,
परमाणुभट्टी जनित ताप-शक्ति का वाहक भी वह होता है ।

अनंत भट
ध्रुव, भा. प. अ. केंद्र,
मुंबई 400 085

अन्य समाचार

1. अब फेरोमोन्स आकर्षित करेंगे महिला ग्राहकों को

प्रख्यात जर्मन लेखक पैट्रिक सुस्किंड के एक प्रकाशित उपन्यास "परफ्यूम" में 18 वीं शताब्दी के एक फ्रांसीसी इत्र विशेषज्ञ का उल्लेख है जो विभिन्न इत्रों का प्रकल्पन आसवन विधि से करता था । विशेष रूप से ऐसे इत्रों के निर्माण में वह सक्रिय था जो मनुष्यों में अप्रतिरोध्य आकर्षण अथवा सद्य: जात विकर्षण उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं । सिडनी के इत्र अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने इस उपन्यास के तथाकथित केंद्रीय विषय पुरुषों के यौन फेरोमोन्स के बारे में कई प्रयोग किये हैं ताकि इनकी विशिष्ट गंध का उपयोग करके महिला ग्राहकों को विक्रय पटलों पर आकर्षित किया जा सके । प्रो. इयान वॉलर का विश्वास है कि फेरोमोन्स 18-30 वर्ष की आयुवाली महिलाओं के क्रयविषयक निर्णयों को अवश्य प्रभावित कर सकते हैं । प्रयोगात्मक स्तर पर इस प्रकार के 100 से भी अधिक विभिन्न फेरोमोन्स में से वांछित गुण युक्त फेरोमोन का पृथक्करण एक जटिल समस्या होती है ।

इस विषय पर संपन्न हुए अध्ययनों तथा सर्वेक्षणों से यह स्पष्ट हो चुका है कि फेरोमोन्स केवल उर्वर महिलाओं (संतानोत्पत्ति हेतु सक्षम) को ही अधिक आकर्षित करते हैं परंतु गर्भ निरोधक गोलियों का सेवन करने वाली महिलाएं एक विशिष्ट फेरोमोन की ओर अपेक्षाकृत अधिक संख्या में आकर्षित हुईं ।

2. वंशाणु-क्रांति द्वारा गर्भपातों में कमी लाना संभव

चिकित्साशास्त्रियों ने एक ऐसी तकनीक का पता लगाने में अद्वितीय सफलता अर्जित की है जो सहस्रों महिलाओं को आवर्ती (Recurrent) गर्भपातों से मुक्ति दिलाने में सहायक हो सकती है । वैज्ञानिकों ने अब आम आनुवंशिक असामान्यता को समाप्त करने की एक युक्ति ज्ञात कर ली है जिसके कारण अधिकांश गर्भपात होते हैं । लंदन के सेन्ट थॉमस चिकित्सालय में इस युक्ति के सफल परीक्षण कई महिलाओं पर संपन्न किये जा चुके हैं जिन्हें बारंबार गर्भपात हो जाता था । इन महिलाओं ने उपचार के उपरांत स्वस्थ शिशुओं को जन्म दिया है । सामान्यतया उर्वर आयु वर्ग वाली कुछ गर्भधारण योग्य महिलाओं में कभी-कभी आनुवंशिकीय असामान्यता पायी जाती है जिसे गुणसूत्रीय विस्थापन (Chromosomal translocation) कहा जाता है । ऐसा मात्र 0.2% महिलाओं में ही होता है अर्थात् प्रति 500 में केवल एक मामले में ।

यद्यपि उपर्युक्त असामान्यता गर्भधारण में तो बाधक नहीं होती है तथापि, भ्रूणों के विकास में हानिप्रद अथवा विनाशकारी सिद्ध हुई है क्योंकि इस स्थिति में एक गुणसूत्र का आनुवंशिक पदार्थ आंशिक मात्रा में दूसरे गुणसूत्रों के अन्यान्य अंशों से संयोजित हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप गर्भपात हो जाता है अथवा विकलांग शिशु का जन्म होता है । अधिकांश माताएं जिन्होंने इस असामान्यता के लिए रक्त परीक्षण करवाये, संतान प्राप्ति के लिए निराश ही सिद्ध हुईं । संप्रति, चिकित्सा विज्ञानियों ने भ्रूणों की जांच के द्वारा यह ज्ञात करने की युक्ति का पता लगा लिया है जिसके द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि इस प्रकार की असामान्यता किन भ्रूणों के द्वारा वंशानुगत की जाती है । तथाकथित जांच IVF तकनीक के माध्यम से की जाती है । इस तकनीक (IVF = कृत्रिम भ्रूण निर्माण) में भ्रूणों को कृत्रिम वातावरण में उत्पन्न करना होता है । जब ये अष्टकोशीय अवस्था में पहुंचते हैं तो कोशिका को पृथक करके गुणसूत्रीय असामान्यता का परीक्षण किया जाता है । असामान्यता युक्त भ्रूणों को अलग कर लिया जाता है ।

पूर्ण सामान्य भ्रूणों को पुनर्स्थापित कर दिया जाता है तथापि IVF तकनीक के उपयोग में नैतिक जटिलताएं बाधक होती हैं । इस तकनीक का सफल परीक्षण डॉ. ओगिल्वी ने गुऑय चिकित्सालय में किया है । अनुमान है कि इस तकनीक के द्वारा ब्रिटेन में प्रतिवर्ष होनेवाले 2,50,000 गर्भपातों में से लगभग 10% पर नियंत्रण प्राप्त करना संभव है । प्रो. प्रेकले ने एक महिला के अंडाशय से एकत्रित किये गये कुल 23 डिंबों से चयनित

दो सामान्य डिंबों से दो जुड़वां शिशुओं के विकास में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है। इस महिला का पहले गर्भपात हो गया और द्वितीय उपचारित प्रयास में उसी ने जुड़वां शिशुओं को जन्म दिया।

इस महत्वपूर्ण तकनीक के प्रयोग से उत्पन्न प्रथम शिशु "गॉई बैन्क्रोफ्ट" का नामकरण चिकित्सालय के नाम पर ही किया गया था। चिकित्सकों ने उसके पश्चात् 9 अन्य मामलों में शिशु जन्म की सफलता अर्जित करके इस तकनीक की विश्वसनीयता सिद्ध कर दी है। वैज्ञानिकों के इस दल के प्रधान प्रो. पीटर ब्रॉड, जो प्रसूतिरोग एवं प्रजनन विभाग के अध्यक्ष भी हैं, के अनुसार पहले इस समस्याग्रस्त रोगियों को असाध्य मानकर वापस भेज दिया जाता था। परंतु अब उन सभी रोगियों के लिए यह तकनीक जीवन की नवीन आशा जगायेगी।

3. प्रतिजीविकीय प्रतिरोध में आशातीत वृद्धि

1995 से 1998 की अवधि में प्रतिजीविकीय प्रतिरोधक संक्रमणों में लगभग 33 प्रतिशत की वृद्धि हो गयी है। प्रतिजीवकों (Antibiotics) के अनियंत्रित और अतिवादी प्रयोग के कारण उनकी प्रभावी क्षमता लगभग शून्य होती जा रही है। मनुष्यों तथा पशुओं दोनों में इनके अत्यधिक मात्रा में हुए प्रयोग ने रोगाणुओं की एक ऐसी नवसृजित पीढ़ी को जन्म दिया है जो प्रचलित प्रतिजीवकों के प्रति निष्प्रभावित होती है। बीसवीं शताब्दी के मध्य में इन्हीं औषधियों ने चिकित्सा जगत में क्रांति ला दी थी। संप्रति, दिनानुदिन इनके औषधीय प्रभाव में हो रहे ह्रास ने चिकित्साशास्त्रियों को चिंताग्रस्त कर दिया है। अधिकांश शोधकार्य स्ट्रेप्टोकॉकस न्यूमोनाई नामक जीवाणु पर आधारित हैं जो मस्तिष्क सुषुम्ना प्रदाह, न्यूमोनिया एवं मध्यकर्णीय संक्रमण का सर्वत्रव्यापी विदित कारण है। 1995 से 1998 के वर्षों में प्रतिजीविकीय प्रतिरोधी जीवाणुओं के विकास और उत्पत्ति का संकट सर्वाधिक बढ़ गया है। 1995 में 9% व्यक्तियों में मात्र 1 व्यक्ति ही प्रतिजीवकों के प्रतिरोधी जीवाणुओं से ग्रस्त पाया गया था। परंतु वर्ष 1998 में 14% व्यक्तियों में 10 व्यक्ति प्रतिरोधी पाये गये हैं।

प्रो. व्हिटनी के अनुसार आज बहुऔषधि प्रतिरोधी न्यूमोनाई जीवाणु संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हो रही है। उनके द्वारा किये गये अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि 3475 जीवाणुओं में 24% पेनिसिलीन के प्रतिरोधी पाये गये और कुछ क्षेत्रों में इनकी संख्या 35% तक पायी गयी। एक परिकल्पना के अनुसार पेनिसिलीन-प्रतिरोधी जीवाणु भविष्य में अन्य वर्गों के अद्यतन विकसित प्रतिजीवकों के प्रति प्रतिरोध क्षमता अर्जित कर लेने में भी सफल हो जायेंगे।

प्रस्तुति : **विजया तिवारी**
द्वारा - राम प्रताप तिवारी
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान
नामकुम, रांची (झारखंड) - 834 010

4. छिपकलियों की पूंछ और परागण

यह सर्वविदित है कि अधिकांश पुष्पों में परागण की क्रिया कीटों के माध्यम से संपादित होती है। पक्षीगण एवं स्तनधारी अधिकांश बीजों के प्रकीर्णन में सहायक होते हैं। ये दोनों क्रियाएं वास्तव में सह-उद्विकास के उदाहरण हैं जिसका उल्लेख सर्वप्रथम 1871 में प्रकाशित चार्ल्स डारविन की प्रख्यात कृति "Descent of Man" में किया गया है। यह सह-उद्विकास की प्रक्रिया अनुकूलन के प्रतिफल के रूप में प्रकट हुई जो एक प्रजाति ने दूसरी पर आरोपित किये होंगे। अनुकूलन अतिशय प्रखर रहा होगा।

उदाहरणार्थ, कुछ प्राणी एक पौधे से दूसरे पौधे पर परागकणों के पहुंचाने में सहायक होते हुए स्वयं कणों के वाहक नहीं होते हैं। कभी-कभी ये दूसरे जीवों के माध्यम से परागकणों के प्रकीर्णन को सहज बनाते हैं। सिडनी विश्वविद्यालय के प्रो. ओल्सन एवं रिचर्ड शाइन ने स्वीडन स्थित गोथने वर्ग विश्वविद्यालय में शोधरत डॉ. एलिज़ाबेथ बेक ओल्सन के साथ संपन्न किये गये एक शोध सर्वेक्षण के आधार पर सर्वप्रथम यह खोज की है कि एक सरीसृप-वर्गीय जंतु और पौधे में परागण के उद्देश्य से परस्पर लाभदायक संबंध होता है।

वर्ष के अधिकांश समय में तस्मानिया की बर्फीली कोतरी (Snow Skink) जो इस द्वीप पर स्थित पर्वत शिखरों पर रहती है और छिपकली की तरह होती है, अपने भोजन स्वभाव में सर्वभक्षी होती है परंतु जब मधुझाड़ (Honey Bush) पुष्पित हो जाते हैं तो यह सरीसृपवर्गीय प्राणी पुष्पों की कठोर रक्तवर्णी पंखुड़ियों को चीरने लगते हैं जो शेष पुष्प को आवर्णित रखती हैं। ये छिपकलियां मकरंद प्राप्ति के प्रयोजन से दलपुंजों को चबाकर थूक देती हैं। प्रथम दृष्टया यह क्रूरता मधुझाड़ों के लिए लाभदायक नहीं प्रतीत होती है, परंतु वास्तव में यह एक लाभकारी क्रिया है। इसके कारण पुष्प के प्रजननांग अनावृत्त हो जाते हैं और परागण संपादनकारी कीटों को इनकी ओर आकर्षित होने का सुअवसर उपलब्ध हो जाता है।

प्रो. ओल्सन और उनके साथियों ने यह अवलोकन किया है कि दलपुंज से ढके पुष्पों से बीज उत्पादन नहीं होता है जबकि 87% दलपुंज भंजित पुष्पों से बीज उत्पन्न होते हैं। छिपकलियों की भूमिका की जांच हेतु किये गये परीक्षणों में मधुझाड़ों के चारों ओर नॉयलान की जाली लगा दी गयी। जाली में बंद पौधों में से केवल 16% में ही दलपुंज भंजित या अनावृत्त पाये गये जो संभवतः वायु के तीव्र झोंकों के कारण हुआ। प्रो. ओल्सन ने अध्ययन के दौरान देखा कि छिपकलियां परागकणों के परिवहन में कोई भूमिका नहीं अदा करती हैं परंतु अन्य कई प्रकार के कीटों यथा बर्रे, मक्खियां, भौंरे (Bumble bees) आदि के इन झाड़ों के अनावृत्त पुष्पों पर भोजन की खोज में आने से परागण की क्रिया संपन्न होती रहती है।

दलपुंज से आच्छादित पुष्पों में इन कीटों का प्रवेश असंभव होता है जब तक उनके दलपुंजों का भ्रंश छिपकलियों के द्वारा नहीं किया जाता है। प्रो. ओल्सन ने मधुझाड़ों में संपन्न होने वाले परागण की जटिल प्रक्रिया का मुख्य कारण तस्मानिया के पठार की प्रतिकूल और अप्रत्याशित जलवायु को माना है। कीट-परागित पौधों में पुष्प खिलने की प्रक्रिया पर्यावरण में उष्णता पर आश्रित होती है तथा कीटों को उड़ने के लिए अपेक्षित क्रिया शीलता हेतु भी उष्णता आवश्यक है। अधिसंख्य वनस्पतियों में परागण अनुकूल जलवायु पर ही निर्भर रहता है परंतु मधुझाड़ के आश्चर्यजनक रूप से इन शीतरुधिर सरीसृपों का उपयोग तापमानमापी यंत्र के स्वरूप में करते हैं। इन कोतरियों को क्रियाशील होने के हेतु उष्ण, धूपयुक्त जलवायु की आवश्यकता होती है अतः इसी प्रकार की जलवायु में मधुझाड़ों के पुष्पदलपुंज भी इनके द्वारा भ्रंशित कर दिये जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो गया है कि कोतरियों और मधुझाड़ों का उद्विकास इसी प्रकार सहभागिता के आधार पर हुआ है। इन छिपकलियों के प्रत्युपकार के उपहारस्वरूप मधुझाड़ के पुष्प स्वादिष्ट मकरंद उन्हें प्रदान करते रहते हैं।

5. कैंसर नाशी औषधियों के प्रयोग से प्रजनन शक्ति में कमी

अमरीका में कुछ कैंसर नाशी औषधियों के द्वारा उपचारित किशोरों में प्रजनन विषयक समस्याएं उत्पन्न होने के प्रमाण मिले हैं। किशोर वय पुरुषों में कैंसर के आक्रमण को नियंत्रित करने के उपरांत संपन्न हुए कतिपय अध्ययनों में 90% मामलों में शुक्राणुओं में कमी होने के प्रमाण मिले हैं। बोस्टन (मैसाच्यूसेट्स) स्थित डाना फार्बर कैंसर अनुसंधान संस्थान तथा हारवर्ड चिकित्सालय से संबद्ध शोधकर्ताओं ने 17 पुरुषों (विभिन्न प्रकार के कैंसरों से आक्रांत) के औषधीय उपचारोपरांत अध्ययनों में मात्र 2 में ही शुक्रणुओं की मात्रा सामान्य पायी गयी।

उपर्युक्त अध्ययनों में कैंसर रोगियों के उपचार हेतु CPA (साइक्लोफॉस्फॉमाइड) का प्रयोग किया गया था। CPA की न्यूनतम मात्रा ग्रहण करने वाले रोगियों में से दो में सामान्य शुक्राणु संख्या प्रदर्शित हुई। चिकित्सकीय दृष्टि से यह सर्वथा अनुचित होगा कि रासायनिक उपचार पर निर्भर किशोरों को उनकी उर्वराशक्ति की रक्षा हेतु अल्पमात्रा में ही औषधि प्रयोग करना है। वस्तुतः CPA औषधि क्षारोदीय अभिकर्ता (Alkylatory agent) है और इसका प्रयोग अन्यान्य प्रकार के कैंसरों की चिकित्सा में किया जाता है।

CPA वयस्क पुरुषों में प्रजनन शक्ति की वृद्धि के लिए भी लाभदायक होती है परंतु किशोरवय पुरुषों में इसके दीर्घकालिक प्रयोग से विपरीत परिणाम होते हैं। प्रो. लिसा डिलर के अनुसार यौवनारंभ के पूर्व कैंसर चिकित्सा हेतु प्रयुक्त CPA प्रजनन क्षमता पर कोई प्रभाव नहीं डालती है।

6. इक्कीसवीं शताब्दी की कुछ संभाव्य विस्मयकारी वैज्ञानिक उपलब्धिया

(i) **वर्ष 2010** : एक निजी क्षेत्रीय प्रयोगशाला में 'डॉली' भेड़ शावक के सृजन हेतु विकसित तकनीक की सहायता से घोर नैतिक विरोध के मध्य प्रथम मानव क्लोन का निर्माण संभव।

(ii) **वर्ष 2020** : अंततोगत्वा इंटरनेट-I और II का स्थान नवजात 'एवरनेट' ले लेगा। एवरनेट की सार्वभौमिक उपलब्धता एवं असीमित पट्टिका आमान की प्रशंसा होगी। समस्त कृत्रिम बुद्धिमत्ता यंत्र और मनुष्य अहर्निश निरंतर ऑन लाइन और अंतर्संचारण हेतु सक्षम होंगे।

(iii) **वर्ष 2030** : मंगल पर पहुंचने के लिए आण्विक आकार वाले 'प्रोब' का प्रक्षेपण संभव। नैनो प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सत्वर विकास की दिशा में अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष अभिकरणों (Agencies) के संगठन द्वारा मंगल ग्रह पर अवतरण हेतु 'यान' का निर्माण संभव - इसे केवल सूक्ष्मदर्शी से ही देखा जा सकेगा।

(iv) **वर्ष 2040** : "Gone with the Wind" की उत्तर कथा का मंचन संभव जिसमें मूल कलाकारों - गे बिल, ले, और अन्यों, के संख्यात्मक (Digital) स्वरूप काम करेंगे और "Hamlet' के मंचन की स्वलिपीकृत (Holographic) प्रस्तुति संभव होगी।

(v) **वर्ष 2050** : परासंवेदी प्रत्यक्षज्ञान (Extrasensroial Perception) के प्रमाण मिलेंगे। शोधकर्ताओं को दूरसंवेदन (Telepathy), अतींद्रिय दृष्टि (Extrasensroial clairvoyance) एवं अनुभूति (Recognition) की उपस्थिति प्रत्येक मनुष्य में सुषुप्तावस्था में होने के प्रमाण मिले।

(vi) **वर्ष 2060** : समस्त लघु और विशाल कंपनियों का संलयन संभव। परिणामस्वरूप 10 विशालकाय मातृ-कंपनियां ही बचेंगी। कालांतर में इनके भी सायुज्यन के फलस्वरूप एक बृहत् व्यापार निगम उत्पन्न होना संभव।

(vii) **वर्ष 2070** : पृथ्वीवासियों के अन्य दूरस्थ ग्रहों से संचार संबंध का श्रीगणेश संभव। पराभौमिक बुद्धिमत्ता (Extraterrestrial Intelligence) की खोज कर्त्री संस्था को प्राप्त हुए संकेतों से यह सुनिश्चित हो जायेगा कि पृथ्वी के अतिरिक्त अन्यत्र कोई दूसरी सभ्यता भी विद्यमान है। पृथ्वी से लगभग 30×10^6 प्रकाश वर्षों की दूरी होने के कारण हमारे लिए उस सभ्यता से मिल पाना संभव नहीं होगा।

(viii) **वर्ष 2080** : मानव को विश्व शतरंज विजेता होने का गौरव एक बार पुनः प्राप्त होगा - आनुवंशिकीय दृष्टि से परिष्कृत बुद्धि तथा स्नायु विषयक प्रतिस्थापनों के फलस्वरूप कंप्यूटरों को पराजित कर लगभग 80 वर्षों के उपरांत मनुष्य एक बार पुनः शतरंज की चैंपियनशिप अर्जित करने में सफल होगा।

(ix) **वर्ष 2090** : मृत्योपरांत जीवन की अवधारणा और प्राण प्रवर्तन की आशाएं प्रस्फुटित होंगी। प्रशीत गृहों, क्रायोजेनिक कैप्सूलों, तरल नाइट्रोजन में सुरक्षित प्रथम मृत मानव शरीर में जीवन का पुनर्संचार किया जायेगा। शीर्ष रूप से कैंसर रोगी जो वर्ष 1975 से क्रायोजेनिक कैप्सूलों में USA में मृत्योपरांत जीवन की आशा की प्रतीक्षा कर रहे हैं उन्हें भी पुनरुज्जीवन मिलेगा।

प्रस्तुति : **अखिलेश कुमार तिवारी**
A-1, भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान,
नामकुम रांची - 834 010

कुछ फूल : कुछ कांटे

आप द्वारा प्रेषित 'वैज्ञानिक' (जनवरी - जून 2001, वर्ष 33, अंक 1/2) प्राप्त हुआ । एतदर्थ धन्यवाद । पत्रिका के इसी अंक में मेरे लेख : 'अदम्य जिजीविषा... स्टीफेन हाकिंग' को स्थान देने के लिए मैं आपका आभारी हूं । लेख में पृष्ठ 51, पंक्ति 28 (दूसरा कॉलम) पर कुछ शब्द संभवत किन्हीं तकनीकी त्रुटिवश छूट गये हैं । कृपया इसे इस प्रकार पढ़ें : 'मेरे द्वारा किये गये कार्य ब्लेयर द्वारा किये कार्यों की तुलना में अधिक समय तक याद किये जायेंगे ।'

वर्तमान अंक अपने संपूर्ण स्वरूप में अत्यंत महत्वपूर्ण एवं सारगर्भित जानकारियों को समेटे हुए है जिसके कारण यह विद्यार्थियों एवं जन - सामान्य के लिए एक संग्रहणीय अंक बन गया है जिसके लिए आप एवं आपका संपादन मंडल धन्यवाद का पात्र है । अंक के सभी लेखकों को भी मेरी बधाइयां ।

डॉ. राज किशोर

डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विद्यालय,
फैजाबाद (उ. प्र.)

जनवरी - जून 2001 का 'वैज्ञानिक' का अंक मिला । मुखपृष्ठ पर दार्शनिक स्टीफन हॉकिंग का चित्र देखकर मन प्रसन्न हो गया । सभी लेख अच्छे हैं ।

मोहन चंद्र कबड्वाल

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, मुक्तेश्वर,
नैनीताल, (उत्तरांचल) 263138

वैज्ञानिक का जनवरी-जून 2001 अंक मिला, धन्यवाद । पत्रिका में प्रकाशित लेख और अन्य सभी स्तंभ पठनीय तथा अधुनातन वैज्ञानिक जानकारी से परिपूर्ण सिद्ध हुए । आशा है कि आप पत्रिका के कलेवर में विस्तार कर समस्त भारतवासियों और विज्ञान प्रेमियों के ज्ञानवर्धन में सहयोग करेंगे । स्तरीय लेखों और नवीनतम विज्ञान समाचारों के चयन हेतु एक बार पुन: मेरी ओर से साधुवाद स्वीकार करें । साथ ही, लेखकगणों के उत्साहवर्द्धन हेतु भी धन्यवाद ।

पूजा तिवारी

IV-1, लाख अनुसंधान परिषद,
नामकुम, रांची (झारखंड)

वैज्ञानिक पत्रिका के वर्ष 33, अंक 1/2 (जनवरी-जून 2001) में श्वास रोग में एलर्जी और भूकंपों से संबंधित उपयोगी लेख पढ़े । साथ ही इसमें 'एड्स एक जानलेवा रोग - जानकारी एवं बचाव' लेख तथा 'एड्स दे रहा है दस्तक' कविता द्वारा पाठकों का ध्यान एड्स जैसे भयावह रोग की ओर सफलतापूर्वक आकृष्ट किया गया है । इस प्रकार के और प्रयास अन्य लोगों और संगठनों द्वारा भी किये जा रहे हैं । इसी क्रम में इस बारे में, मैं एक जानकारी आपसे बांटना चाहता हूं । मैंने हाल में ही, हिंदी भाषा में लिखा 'मैं एड्स हूं' बेजोड़ उपन्यास पढ़ा जिसमें लोगों को इस भयावह बीमारी के बारे में एड्स के एक मरीज की जुबानी बतलाया गया है । यह उपन्यास आचार्य रसिक बिहारी मंजुल का लिखा हुआ है और निर्मल प्रकाशन पुणे द्वारा प्रकाशित हुआ है । इस पुस्तक की समीक्षा मैंने लिखी है और वह 'कांति' मासिक पत्रिका (नयी दिल्ली) के अगस्त 2001 के अंक में प्रकाशित हुई है ।

विजय कुमार शर्मा

2/4 मालवीय नगर, जयपुर (राज.) 302017

वैज्ञानिक के पूर्व संपादक सम्मानित

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के पूर्व वैज्ञानिक तथा 'वैज्ञानिक' के पूर्व-संपादक डॉ. देवकी नंदन का पिछले 34 वर्षों के दौरान लगातार की गयी उनकी हिंदी सेवाओं के लिए हिंदी दिवस (2001) के उपलक्ष्य में 'आर्य समाज', वाशी ने एक विशेष समारोह में सार्वजनिक अभिनंदन किया । इस अवसर पर केंद्रीय जहाज़रानी मंत्री माननीय श्री वेद प्रकाश गोयल ने डॉ. देवकी नंदन को प्रशस्ति-पत्र भेंट किया । इस पत्र में उल्लेख किया गया है कि वर्तमान में भाषा-एडवर्टाइज़िंग व्यवसाय से जुड़े तथा पिछले 34 वर्षों से विज्ञान-लेखन, रेडियोवार्ताओं, पुस्तक एवं पत्रिका संपादन आदि कार्यकलापों के ज़रिए लगातार हिंदी भाषा का पोषण एवं संवर्धन करने वाले डॉ. देवकी नंदन एक रचनाशील विद्वान के रूप में समाज की आशाओं व अपेक्षाओं पर खरे उतरे हैं । डॉ. देवकी नंदन ने हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद (भा. प. अ. केंद्र) के प्रथम महासचिव के रूप में कार्य किया ।

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र की पहली हिंदी पुस्तिका- 'परमाणु' भी तैयार की । आज तक आपने धर्मयुग, वैज्ञानिक, विज्ञान प्रगति, नवनीत जैसी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं के लिए 80 लेख लिखे हैं तथा 200 से अधिक रेडियोवार्ताएं दी हैं ।

आपने हिंदी में मोनोग्राफ प्रकाशन का संयोजन, 'न्यूक्लियर इंडिया' की समांतर पत्रिका 'परमाणु' के लिए हिंदी में लेखों के अनुवाद / रूपांतरण संयोजन, कई अन्य वैज्ञानिक पुस्तकों, लेखों का अनुवाद कार्य किया ।

आप CSIR की 'भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका' के संपादन मंडल के सदस्य रह चुके हैं । आजकल आप लायन्स क्लब की पत्रिका का संपादन भी कर रहे हैं ।

इस सम्मान पर डॉ. देवकी नंदन को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं ।

परिषद के पूर्व कोषाध्यक्ष का निधन

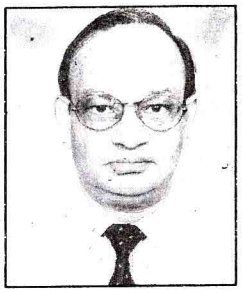

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के एक अत्यंत कर्मठ कोषाध्यक्ष एवं उत्साही सदस्य श्री ललित कुमार का 15 अगस्त 2001 को अचानक निधन हो गया ।

श्री ललित कुमार का जन्म 11 अगस्त 1945 को हुआ था । भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के ट्रेनिंग स्कूल के आठवें बैच (1964-65) में प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात अगस्त 1965 में उन्होंने केंद्र के धातुकी प्रभाग में अनुसंधान कार्य शुरू किया । पदार्थ विज्ञान, एक्स-रे विवर्तन, माइक्रोस्कोपी, रासायनिक विश्लेषण के लिए इलेक्ट्रॉन स्पेक्ट्रोस्कोपी (ESCA) का उपयोग उनके अनुसंधान के मुख्य विषय रहे । कुछ समय तक उन्होंने जर्मनी में अतिथि वैज्ञानिक में रूप में पदार्थ विज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

श्री ललित कुमार परिषद के गठन के समय से ही इसकी गतिविधियों से पूरी तरह जुड़े रहे । वह एक लंबे समय तक वैज्ञानिक के व्यवस्थापन मंडल के सदस्य तथा परिषद के कोषाध्यक्ष (1989-93, 95-97) भी रहे । उन्होंने परिषद की कई संगोष्ठियों एवं अन्य गतिविधियों के संचालन में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

उनका यह असामयिक दुखद निधन हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की अपूरणीय क्षति है ।

रचनाकारों से विशेष निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1] (क) विभक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', 'लड़कों को'
(ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिला कर लिखा जाये-
उदाहरण - 'उसने', 'मैंने', 'उनका', 'हमसे'
(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो, उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'इसी से', 'तुम्हीं को', 'सभी को'

2] पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें ।

3] संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4] जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये -
उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये', 'लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये' आदि ।
दृष्टव्य है कि 'भाई', 'लाई', 'पाई' आदि संज्ञाएं हैं । भविष्यकाल में ये रूप निम्न प्रकार होंगे - आयेगा, पायेगा, लायेगा, जायेगा आदि । आवेगा, जावेगा आदि प्रयोग ठीक नहीं हैं ।

5] 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए ।

6] 'लिये/लिए' : 'लिये' को 'लिया' का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभक्ति चिन्ह ।
'चाहिये/चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये ।

7] 'एसा/ऐसा' : 'ऐसा' लिखा जाये ।
'दिखाई/दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग) । *उदाहरण* - 'सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें ।

8] आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -
उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए', 'कीजिए', 'रखिए' आदि ।

9] अनुस्वार और अनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए - वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा, ङ ('क' वर्ग), ञ ('च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग), व न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां हैं ।
अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है;
उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि ।
इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है । जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे ।

10] एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं । जैसे, रुपया - रुपये, हंसिया - हंसिये ('हंसिए' आदरार्थ आज्ञा रूप होगा)

11] संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप में प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित है । जैसे, अस्थायी, बाजपेजी, उत्तरदायी आदि । इन्हें अस्थाई, बाजपेई, उत्तरदाई लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक ।

12] चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की ज़गह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये । जैसे, अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां आदि ।

13] संख्याओं को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिया जाये - 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 0

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा श्री कुलवंत सिंह द्वारा प्रिंट शॉप, चेंबूर, मुंबई (फोन : 555 2348 / 556 6284) में मुद्रित व प्रकाशित ।

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र , हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृ

एनवल क्राइसैन्थिमम

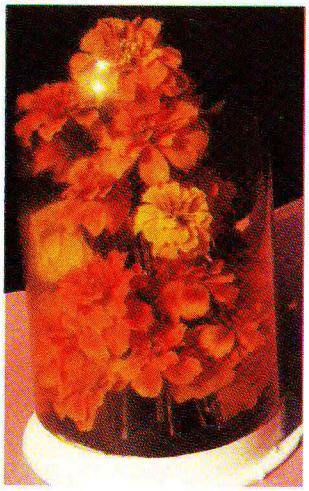

गेंदा

गुलाब

पेपर वेट, ग्रीटिंग इत्यादि

सूखे हुए फूलों से तैयार की गयी सजावटी वस्तुएं